योगविद्या

वर्ष 6 अंक 10
अक्टूबर 2017
सदस्यता डाकखर्च – रु100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2017

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के रंगीन फोटो : गुरु पूर्णिमा 2017

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥6.17॥

अर्थ–जो यथायोग्य आहार-विहार करता है, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करता है तथा यथायोग्य सोता व जागता है, योग उसके सब दुःखों का नाश कर देता है।

योग के साधक को हमेशा मध्यम मार्ग अपनाना चाहिए। मनुष्य का तंत्रिका-तंत्र अत्यन्त संवेदनशील होता है। वह मामूली चीजों से प्रभावित हो जाता है और मन में विक्षेप उत्पन्न करता है।

इसलिए यह आवश्यक है कि हम एक संयमित और अनुशासित जीवन जिएँ। भोजन, निद्रा और विहार-मनोरंजन में अति नहीं होनी चाहिए। तभी योग में सफलता मिलेगी जिससे जीवन के सभी दुःख और कष्ट मिट जाएँगे।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर – 811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद – 121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 6 अंक 10 · अक्टूबर 2017
(प्रकाशन का 55 वाँ वर्ष)

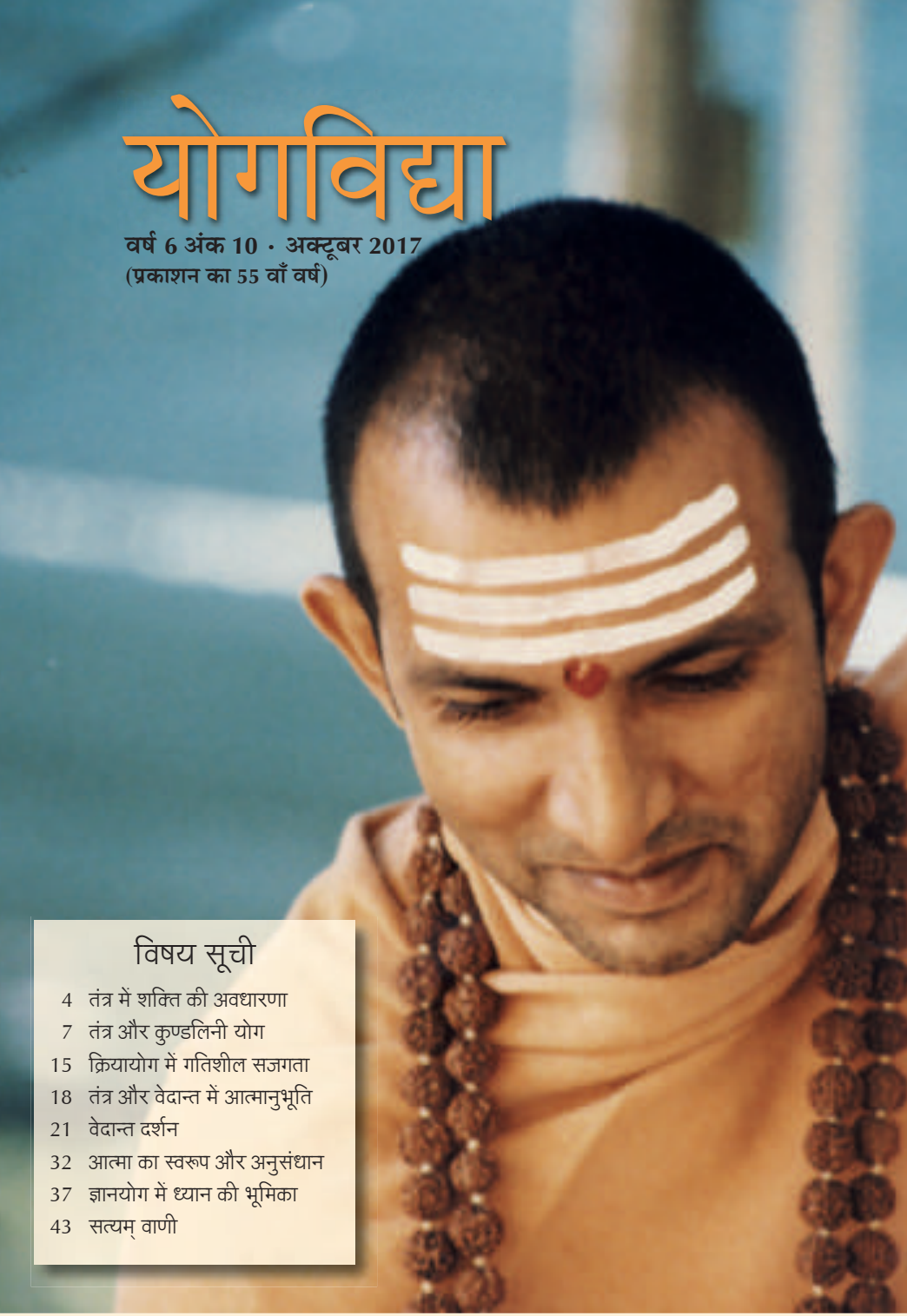

विषय सूची

4 तंत्र में शक्ति की अवधारणा
7 तंत्र और कुण्डलिनी योग
15 क्रियायोग में गतिशील सजगता
18 तंत्र और वेदान्त में आत्मानुभूति
21 वेदान्त दर्शन
32 आत्मा का स्वरूप और अनुसंधान
37 ज्ञानयोग में ध्यान की भूमिका
43 सत्यम् वाणी

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

तंत्र में शक्ति की अवधारणा

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

उस मातृ-शक्ति को शत-शत प्रणाम जो वेदान्तियों का परब्रह्म, शैवों का परमशिव, वैष्णवों का महाविष्णु, ईसाइयों का परम पिता, मुसलमानों का अल्लाह, यहूदियों का यहोवा, बौद्धों का निर्वाण, ज़रथुस्त्रियों का अहूर मज़्दा, पाश्चात्य दार्शनिकों का स्वयं-स्थित-तथ्य, सभी धर्मों का सर्वशक्तिमान् ईश्वर है।

शक्ति का दर्शन उतना ही प्राचीन है जितने वेद। ऋग्वेद का देवी सूक्तम् शक्ति के सिद्धान्त का मूल स्रोत है। देवी सृष्टि का सृजन कर उसे ऊर्जा से व्याप्त करती है। वही दिव्य ज्ञान का स्रोत है। शाक्त आगमों, तंत्रों तथा देवी भागवत में देवी का यशोगान अत्यन्त विस्तारपूर्वक गाया गया है। महादेवी, महेश्वरी अथवा पराशक्ति परमात्मा की असीम शक्ति का स्रोत है। दुर्गा, त्रिपुर सुन्दरी, ललिता, राज राजेश्वरी आदि सभी पराशक्ति, मूल प्रकृति, चित् शक्ति अथवा ब्रह्म शक्ति के ही विभिन्न आयाम हैं।

शाक्त दर्शन के अनुसार परमशिव अक्षय चेतना है और शक्ति उनकी क्रियात्मक ऊर्जा है। समस्त ब्रह्माण्ड शक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, वह देवी के वैभव और ऐश्वर्य की अभिव्यक्ति मात्र है। यह शाक्त दर्शन का आधारभूत सिद्धान्त है।

जिसके पास शक्ति है वही शाक्त कहलाता है। तंत्र की साधना साधक को अपरिमित शक्ति तथा सिद्धियाँ प्रदान करती है। लेकिन शक्ति की यह साधना किसी सिद्ध तांत्रिक गुरु से ही सीखनी चाहिए। तंत्र के साधक में पवित्रता, श्रद्धा, भक्ति, गुरु के प्रति समर्पण, वैराग्य, विनम्रता, साहस, सार्वभौम प्रेम, सत्यनिष्ठा, अपरिग्रह तथा संतोष जैसे सद्गुणों का होना परम आवश्यक है। इन गुणों का अभाव होने से संभव है कि वह शक्ति का दुरुपयोग करे।

तंत्र हिन्दू मत का एक अभिन्न अंग है। हिन्दुओं के आध्यात्मिक पुनरुत्थान में शाक्त परम्परा एक सशक्त माध्यम रही है। मूढ़, अज्ञानी एवं अयोग्य व्यक्तियों द्वारा प्रयोग में लाए जाने के कारण ही इसका रूप किंचित् विकृत हुआ है। इसके दुरुपयोग का एक उदाहरण है पंचमकार, अर्थात् मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन का सिद्धान्त, जिसे स्थूल रूप से समझकर अनेक लोगों ने अपनी निम्न वासनाओं की पूर्ति का माध्यम बनाया है।

शाक्त तंत्र का मूल सिद्धान्त वस्तुत: अद्वैतवाद है। वह इस तथ्य की घोषणा करता है कि परमात्मा और जीवात्मा, दोनों एक ही हैं। शाक्त साधक भी वेदों को मौलिक शास्त्र मानते हैं तथा तंत्र के आगम शास्त्रों को वेदों में निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति का साधन बताते हैं। इसके सभी सिद्धान्त न्यायसंगत एवं तर्कसम्मत हैं और सभी शिक्षाएँ सही एवं उचित। तंत्र शास्त्रों का सावधानीपूर्वक गहन अध्ययन होना चाहिए। शाक्त तंत्र स्वयं अद्वैत वेदान्त का एक साधना शास्त्र है। यह सचमुच एक गहन और शक्तिशाली साधना पद्धति है।

कुलार्णव तंत्र एवं महानिर्वाण तंत्र शाक्त परम्परा के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं। कृष्ण यजुर्वेद का योग कुण्डलिनी उपनिषद् और योग तत्त्वोपनिषद्, जाबाल दर्शन, त्रिशिखा ब्राह्मण इत्यादि कुण्डलिनी शक्ति के सैद्धान्तिक ज्ञान तथा साधना विधि के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। तंत्र योग हमारे शरीर में मूलाधार से आज्ञा तक व्याप्त षड्चक्रों में निहित ऊर्जा के विकास पर जोर देता है। तंत्र के अभ्यास द्वारा साधक कुण्डलिनी को जाग्रत कर सहस्रार चक्र में स्थापित कर सकता है।

तंत्र शास्त्र जादू-टोना, सम्मोहन आदि के ग्रंथ नहीं हैं। वे तो ज्ञान के ऐसे अद्भुत संग्रह हैं जिनसे सभी जाति, वर्ण और धर्म के व्यक्ति प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं तथा आध्यात्मिक ज्ञान से सम्पन्न बनकर आनन्द के असीम साम्राज्य में विचर सकते हैं। वे मात्र पुस्तकें नहीं, वरन् साधना शास्त्र हैं जो स्वतंत्रता, पूर्णता, आनन्द एवं मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

तंत्र शब्द दो पदों के मेल से बना है, *तनोति* एवं *त्रायते*। तत्त्व एवं मंत्र के ज्ञान को व्यापक रूप से निरूपित करता है (*तनोति*) और साधक का उद्धार करता है (*त्रायते*), इसलिये इसे तंत्र कहते हैं। तंत्र ज्ञान का अनन्त भंडार है, एक ऐसी अद्भुत नौका है जो साधक को भवसागर के दूसरे छोर तक सकुशल पहुँचाती है।

कुछ मायनों में तंत्र एक गुप्त विद्या भी है, इसके कुछ आयाम गोपनीय रखे जाते हैं। इसलिए मात्र शास्त्रों के अध्ययन द्वारा आप इसे सीख नहीं सकते। आपको इसका ज्ञान और साधना विधि किसी जानकार तांत्रिक आचार्य या गुरु की शरण में जाकर ग्रहण करनी होगी, क्योंकि इसके रहस्यों की कुंजी उन्हीं के पास होती है।

शक्ति शब्द की व्युत्पत्ति '*शक्*' पद से हुई है जिसका तात्पर्य होता है–'कुछ करने में समर्थ होना।' यद्यपि व्याकरण की दृष्टि से यह शब्द स्त्रीलिंग है, परन्तु वस्तुत: शक्ति न तो स्त्री है और न ही पुरुष। यह मात्र एक ऐसा बल है, ऐसी ऊर्जा है जो स्वयं को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त करती है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, विद्युत् आदि उसके स्थूल रूप हैं, जिसे अपरा प्रकृति भी कहते हैं। जीवनी शक्ति उसका परा प्रकृति स्वरूप है। मन चित्त शक्ति का ही एक रूपांतरण है।

साधकों के तीन वर्ग होते हैं–पशु, वीर और दिव्य। पशु श्रेणी के साधक ही पंचमकार की स्थूल साधना का अभ्यास करते पाए जाते हैं। लेकिन इस पंचमकार साधना का गूढ़ अभिप्राय है–'अपने अहम् का समूल विनाश करो, देह जनित निम्न वासनाओं का दमन करो, भगवत्-स्मरण के नशे में मग्न रहो और अन्तत: सदाशिव से एकाकार हो जाओ।' दिव्य श्रेणी के साधक इसी वास्तविक अभिप्राय को आत्मसात् कर दिव्य जीवन यापन करते हैं। इसलिए हे बन्धुओं! अपनी पशु वृत्ति को त्यागकर दिव्य वृत्ति को जाग्रत करो। पराशक्ति माँ जगदम्बा आप सब पर अपने मंगलाशीष की वर्षा करें और आप प्रज्ञा, शान्ति और परमानन्द से विभूषित हों।

तंत्र और कुण्डलिनी योग

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

मेरे मन में तंत्र शास्त्र के प्रति बड़ी श्रद्धा है, क्योंकि मैं इसे भली-भाँति जानता हूँ। हो सकता है कि आप लोग तंत्र से डरते हों, आपका तंत्र के बारे में यही ख्याल हो– 'लाल कपड़ा, हाथ में बोतल और गले में खोपड़ी।' यह तस्वीर हम लोगों के दिलोदिमाग में बस गयी है। डाली तो हम ही लोगों ने है, पर यह तंत्र शास्त्र की गलत तस्वीर है। वास्तव में ऐसा नहीं है। हमें तंत्र शास्त्र को ठीक ढंग से समझना चाहिए ताकि इस शास्त्र के प्रति सद्भावना उत्पन्न हो।

इस विषय के बारे में लोगों के मन में प्राय: बहुत डर है, लेकिन यह विषय कितना उपयोगी है, मेरा प्रवचन सुनने के बाद आप स्वयं अंदाजा लगा सकेंगे। लोग कुण्डलिनी जगाने के नाम से बहुत डरते हैं, परन्तु इसके बारे में सुनना भी पसन्द करते हैं, करना भी पसन्द करते हैं, और यह भी चाहते हैं कि गुरुजी उनकी कुण्डलिनी को जगा दें। साथ ही डरते भी हैं कि पता नहीं, कहीं दिमाग खराब न हो जाए। तात्पर्य यह कि कुण्डलिनी के बारे में लोगों के मन में अनेक भ्रांतियाँ हैं, बहुत-सी नासमझियाँ हैं, जिन्हें दूर करने के लिए हमें विस्तार से समझाना पड़ेगा।

भारत में सबसे पहले ऋषियों ने वेदों का प्रणयन किया–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ये चार अनादि ग्रन्थ हैं जो दुनिया के सभी ग्रन्थों के बीज हैं। इन्हीं चार वेदों से सब ज्ञान पैदा हुआ और इन्हीं से तंत्र शास्त्र का जन्म हुआ, जिससे फिर योग शास्त्र का जन्म हुआ। हठयोग, राजयोग, मंत्रयोग, प्राणायाम, क्रियायोग–ये सभी योगांग तंत्र शास्त्र से पैदा हुए हैं। मतलब योग का पिता हुआ तंत्र, दादा हुआ वेद।

चक्रों का सिद्धांत

इसी तंत्र शास्त्र में चक्रों का वर्णन आता हैं। पर चक्रों का वर्णन केवल तंत्र शास्त्र तक सीमित नहीं। मध्य एशिया में यहूदियों की जो कबाला प्रणाली है, उसमें भी चक्रों का उल्लेख है, मेक्सिको में जो पुरातात्त्विक खुदाई हुई थी, उसमें माया सभ्यता की जो पुरानी चीजें जमीन से निकली हैं, उनमें भी चक्र पाये गये हैं। चक्रों का मनुष्य के सूक्ष्म शरीर से सम्बन्ध है। इन चक्रों को समझना, और फिर उनको जगाना चाहिए। जगाने की साधना क्या है? जगाने से क्या होता है? यह सब समझना जरूरी है।

चक्र हमारे शरीर में रीढ़ की हड्डी में रहते हैं। मेरुदण्ड स्थूल और शारीरिक है, इसी से होकर नाड़ियाँ सूक्ष्म रूप से जाती हैं। इन नाड़ियों में चक्र होते हैं, और वे चक्र सुषुप्त रहते हैं। चक्रों का सीधा सम्बन्ध मस्तिष्क से होता है। सबसे पहला चक्र

मूलाधार है, वह स्थान जिसे हम शुक्र नाड़ी या अंग्रेजी में पेरिनियम कहते हैं। पुरुषों में यह मल और मूत्र द्वार के बीच की जगह है, और स्त्रियों के शरीर में गर्भाशय के सबसे निचले स्थान में पीछे की तरफ, जिसे अँग्रेजी में सरविक्स कहते हैं। मूलाधार चक्र का मतलब होता है शक्ति का मूल स्थान या मुख्य आधार। यहीं से शक्ति की यात्रा शुरू होती है। मूलाधार के नीचे भी चक्र हैं, और ऊपर भी। मूलाधार के नीचे जो चक्र हैं, वे पशु योनि के माने जाते हैं। चाहो तो उसे आप पाताल लोक बोल सकते हो। उनसे हमारा कोई मतलब नहीं। मूलाधार से उच्चतर चेतना शुरू होती है। शास्त्र के अनुसार मूलाधार चक्र कुण्डलिनी शक्ति का स्थान है, जहाँ पर वह सोई हुई है। यह कुण्डलिनी शक्ति मनुष्य के अन्दर एक ऐसी प्रबल शक्ति है जिसके जागृत होने से मनुष्य की चेतना पूरी तरह बदल जाती है। जिस प्रकार भांग खाने या गांजा पीने से हमारी चेतना बदलती है, उसी प्रकार कुण्डलिनी के जागरण से चेतना रूपान्तरित हो जाती है। मूलाधार चक्र को शक्ति पीठ भी कहते हैं, और इसका प्रतीक उल्टा त्रिकोण है।

मूलाधार चक्र के ठीक ऊपर जहाँ रीढ़ की हड्डी समाप्त होती है, उसे स्वाधिष्ठान चक्र कहते हैं। यह निद्रा पीठ है और उसके ऊपर नाभि के ठीक पीछे रीढ़ की हड्डी में मणिपुर चक्र होता है, जहाँ से वास्तव में आध्यात्मिक यात्रा आरम्भ होती है। मैं कभी-कभी विनोद में कहता हूँ कि मूलाधार चक्र कुण्डलिनी शक्ति का गैरेज है, स्वाधिष्ठान चक्र 'लोकल हाईवे' है, और मणिपुर चक्र से 'नैशनल हाईवे' शुरू होता है।

मणिपुर चक्र के बाद, हृदय के ठीक पीछे रीढ़ की हड्डी में चौथा चक्र होता है, जिसे अनाहत चक्र कहते हैं। यह अनाहत चक्र बहुत महत्त्वपूर्ण चक्र है क्योंकि यहाँ पर शिव और शक्ति, दोनों का योग होता है। इसे भक्ति योग में बहुत मानते हैं। हमारे यहाँ ऐसा मानते हैं कि महिलाओं का अनाहत चक्र स्वाभाविक रूप से जागृत रहता है। यह उन्हें प्रकृति की देन है। अनाहत चक्र में मनुष्य की चेतना एकदम फूल की तरह खिल जाती है। कीर्तन-भजन, श्रद्धा-भक्ति, देवी-देवताओं में मन लगना और अच्छे विचार उत्पन्न होना, यह सब अनाहत चक्र से सम्बन्धित है। इसी चक्र को कबीरदास जी ने 'शून्य महल' कहा है।

अनाहत चक्र के ऊपर गर्दन के पीछे विशुद्धि चक्र होता है। जिस प्रकार से कच्चे तेल को जमीन से निकालकर रिफायनरी में भेजते हैं, उसी प्रकार इस चक्र में एक प्रकार का शोधन होता है। इसकी कहानी शायद आप सभी जानते होंगे। समुद्र मंथन के समय भगवान शंकर ने कालकूट विष पी लिया था। वह विष उनके कण्ठ में रह गया, तो उनका नाम पड़ गया नीलकण्ठ। नीलकण्ठ की पौराणिक किंवदन्ती का सम्बन्ध विशुद्धि चक्र से है। जहाँ तालू में जीभ को चढ़ाते हो वहाँ पर एक गुफानुमा गड्ढा है, जिसे कबीरदासजी 'गगन गुफा' कहते हैं। वहाँ से एक प्रकार का रस बराबर निकलता है, 'रस गगन गुफा में अजर झरे,' जिसे 'अमृत' भी कहते हैं। अगर वह रस निकलना बन्द हो जायेगा, तो फिर आपके शरीर का विकास रुक जायेगा, आप जल्दी बुड्ढे हो जायेंगे। घेरण्ड संहिता में लिखा है कि चन्द्रमा से अमृत झरता है, और सूर्य उसे पी जाता है। अब उस अमृत की गति को उल्टा करके ऊपर की तरफ भेजना है। उसके लिए विशुद्धि चक्र जरूरी है। विशुद्धि चक्र अमृत को ग्रहण करके उसे ब्रह्माण्ड की ओर भेजता है, उसे नीचे की ओर नहीं आने देता। जब वह अमृत नीचे चला जाता है, शक्ति का क्षय होता है और जब ऊपर की तरफ जाता है तो 'ओज' की प्राप्ति होती है।

उसके बाद मस्तिष्क में जहाँ रीढ़ की हड्डी खत्म होती है, वहाँ पर एक छोटी-सी ग्रन्थि है, जिसे 'आज्ञा-चक्र' कहते हैं। यह बहुत-ही महत्त्वपूर्ण चक्र है, जिसकी महिमा मैंने प्राय: सब धर्म-ग्रन्थों में पाई है। पौराणिक लोग इसे शिव जी की तीसरी आँख कहते हैं। बहुत-से लोग जो तंत्र शास्त्र जानते हैं, इसे गुरु चक्र बोलते हैं। यह इतनी छोटी ग्रन्थि है कि इसकी भूमिका डॉक्टर लोगों को भी नहीं मालूम। लेकिन हमारे शरीर में प्राय: जितना भी काम हो रहा है, उसे यह कन्ट्रोल करती है। आज्ञा चक्र का जो प्रतीक है, उसमें दोनों तरफ दो कमल के पत्तों के बीच में शून्य है। यहाँ

तीन बीज मंत्र हैं, हं, क्षं और ॐ। जैसे प्रयागराज में गंगा, यमुना और सरस्वती मिलती हैं, और उस संगम में स्नान करने का बड़ा महत्त्व है, उसी प्रकार योगी लोग आज्ञा चक्र को त्रिवेणी मानते हैं जहाँ इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना मिलती हैं। इस पर ध्यान करना, इसमें गोता लगाना ही योगियों का त्रिवेणी स्नान है। जिस तरह से हम लोग तीर्थस्थानों में जाकर वहाँ स्नान करते हैं, वहाँ का प्रसाद ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार जानकार लोग शरीर के अन्दर स्थित चौंसठ तीर्थों में जाते हैं, वहाँ ध्यान लगाते हैं, और ध्यान लगाने के बाद वे शुद्ध होते हैं।

आज्ञा चक्र के ऊपर, जिस स्थान पर लोग शिखा रखते हैं, बिन्दु चक्र है। इसका प्रतीक अर्ध चन्द्रमा और तारा है, जैसा मुसलमान लोगों के यहाँ होता है। कहते हैं कि अमृत पहले बिन्दु में पैदा होता है और फिर नीचे विशुद्धि पर गिरता है, और उसके बाद में पूरे शरीर में फैलता है।

आनन्द-लहरी नामक तांत्रिक ग्रंथ में जगद्गुरु आदि शंकराचार्य जी ने उल्लेख किया है कि एक छोटा-सा सरोवर है जिसके बीच में एक द्वीप है, और उस द्वीप में चिंतामणि नामक एक वृक्ष है। यह बिन्दु चक्र का ही वर्णन है। बिन्दु चक्र के बाद चक्र समाप्त होते हैं। सहस्रार चक्र नहीं है, वह चक्रों के परे है।

सहस्रार कहाँ पर होता है? जहाँ छोटे बच्चों का सिर बचपन में खुला रहता है, मुलायम रहता है, उसके नीचे एक छोटी-सी ग्रन्थि होती है, जिसे हम लोग पिट्यूटरी ग्रंथि कहते हैं। वह सारे शरीर को ऐसे कन्ट्रोल करती है, जैसे आपका मेन पावर स्टेशन। वह पेशियों, स्नायुओं, विचारों, और शरीर के अन्य सभी विभागों को संचालित करती है। सहस्रार को शिव का परम धाम मानते हैं।

चक्रों का जागरण

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा, बिन्दु, फिर सहस्त्रार, ये सीढ़ियाँ हैं आपकी। इन चक्रों को जागृत करना पड़ता है। पूर्व जन्म में जिसने कुछ साधना की होगी, उसके कुछ निचले चक्र जाग जाते हैं। तब उसे अपनी आध्यात्मिक यात्रा वहीं से शुरू करनी है, जहाँ उसने पहले छोड़ी थी। मगर क्या मालूम आपका कौन-सा चक्र जागा है? यह सबको तो नहीं मालूम, इसलिए हम साधक को शुरू से चालू कराते हैं। जिस चक्र तक उसने पहले कोर्स पूरा कर लिया होगा, वहाँ से उसे अनुभव शुरू होगा। मान लो आपने पूर्व जन्म में साधना शुरू की और मूलाधार और स्वाधिष्ठान चक्रों को आपने जागृत किया। इस जन्म में अगर हम आपको मूलाधार और स्वाधिष्ठान के अभ्यास कराते हैं, आपको कोई विशेष अनुभव नहीं होगा। मगर जैसे ही आपको मणिपुर का अभ्यास करायेंगे, एकदम अनुभव होना शुरू हो जाएगा। हर साधक का अपने जन्म और कर्म के अनुसार अलग-अलग स्तर होता है। हर एक का कोई-न-कोई विशेष चक्र एकदम तैयार रहता है, और मैं मानता हूँ कि अध्यात्म मार्ग में रुचि रखने वाले प्राय: जितने भी साधक हैं, वे अनाहत के करीब हैं। यद्यपि साधना हम मूलाधार से शुरू कराते हैं मगर प्राय: सब अनाहत के आस-पास हैं। बौद्ध धर्म में कहते हैं कि प्राय: लोगों की आध्यात्मिक यात्रा मणिपुर चक्र से शुरू होती है।

यह बात पक्की है कि मूलाधार और स्वाधिष्ठान चक्र बहुत शक्तिशाली हैं, किन्तु इनके जागने पर गिरने की सम्भावना भी बहुत है। इन्हें बुरे चक्र नहीं बोल रहा हूँ। अगर हम आपको दस्त की दवाई देंगे, तो आपका पेट साफ होगा। अब इसे अच्छा मानेंगे कि बुरा? उसी प्रकार से हमारे जितने भी तामसिक और राजसिक संस्कार हैं वे सब मूलाधार में कुण्डलिनी के जागने पर उखड़ते हैं, प्रकट होने लगते हैं। थोड़ी देर में तो ऐसा लगने लगता है कि राम-राम, कहाँ पहुँच गये! गये थे शक्ति जगाने, पर ये काम, क्रोध, और मोह के बवण्डर कहाँ से उठ गये! कभी-कभी साधकों को बड़ी निराशा भी होने लगती है। साधक प्राय: स्वाधिष्ठान तक जाते हैं और वहाँ जाकर बेचारे खुद से परेशान हो जाते हैं। कुण्डलिनी जाग करके फिर सो जाती है। इसको जगाना कठिन नहीं है, बहुत सरल है, मगर स्वाधिष्ठान के ऊपर पहुँचना, यह सबके बस की बात नहीं। अधिकांश साधक इस स्तर पर आकर अपनी मानसिक व्यथाओं से परेशान हो जाते हैं। जो कुछ भी झंझट है, इन दो चक्रों में है। उसके बाद तो रास्ता बिल्कुल साफ है। एक बार मणिपुर में गाड़ी आ गई, फिर सौ किलोमीटर प्रति घण्टा की रफ्तार से ले जाइये। पर याद रखिये, ब्रेक और टायर एकदम ठीक होना चाहिए।

चक्र जागरण के उपाय

इन चक्रों को जगाने के कौन-से तरीके हैं? रीढ़ की हड्डी के अन्दर की तरफ जगह-जगह पर तंत्रिकाओं के गुच्छे जैसे होते हैं, जिन्हें अँग्रेजी में प्लेक्सस कहते हैं। ये

चक्रों के स्थूल प्रतिरूप हैं। इनके बारे में वैसे तो डॉक्टर लोग कुछ मानने को तैयार नहीं, मगर अभी हाल में जो अनुसंधान हुए हैं, उनके आधार पर कुछ वैज्ञानिक इनकी वास्तविकता को मानने लग गये हैं। चक्रों पर सीधे ध्यान तो नहीं कर सकोगे, क्योंकि पता ही नहीं कि वे कहाँ हैं। पर इसके लिए कई परोक्ष उपाय हैं। हर चक्र को जगाने का सीधा उपाय न होने के कारण पहले इसके स्विच सेन्टर को जगाते हैं।

जिस तरह पंखा चलाने के लिए पंखा घुमाने की जरूरत नहीं, बस उसके स्विच को चालू कर दो, उसी तरह जब स्वाधिष्ठान को जगाना होता है तो नाभि के नीचे निम्न बस्ती प्रदेश में, ठीक उसी जगह जहाँ पर आजकल नसबन्दी का ऑपरेशन होता है, वहीं पर ध्यान करते हैं। ध्यान न लगे तो वज्रोली लगाने पर वहाँ पर जो संकुचन होता है, उसका ध्यान करते हैं। मणिपुर को जगाने के लिए नाभि का ध्यान करते हैं, जहाँ पर प्राण और अपान दोनों मिलते हैं। अनाहत चक्र के लिए हृदय के पास ध्यान करते हैं। विशुद्धि का ध्यान करने के लिए कण्ठ में विशेष जगह का ध्यान करते हैं। आज्ञा चक्र के लिए भृकुटी का ध्यान करते हैं। भृकुटी या भ्रूमध्य आज्ञा चक्र का स्विच है। और सहस्रार के ध्यान के लिए वह स्थान है जिसे आप मूर्धा या अँग्रेजी में क्राउन बोलते हैं। इस प्रकार नाभि, हृदय, कण्ठ या भृकुटी पर ध्यान करने से उनके पीछे जो चक्र होते हैं उनमें धीरे-धीरे संचरण होता है।

एक तो यह तरीका है चक्रों के ध्यान का, परन्तु इसके अलावा और भी तरीकें हैं, जिनमें हठ योग के अभ्यास मुख्य हैं। जालन्धर बन्ध विशुद्धि चक्र को जागृत करता है। सर्वांगासन भी विशुद्धि चक्र पर प्रभाव डालता है। हलासन स्वाधिष्ठान से और भुजंगासन मणिपुर से सम्बन्धित है। ऐसे पन्द्रह-बीस आसन हैं, जिनका चक्रों से सीधा सम्बन्ध है। यह बात तो ठीक है कि आजकल हम लोग आसनों का प्रयोग बीमारी दूर करने के लिए करते हैं, लेकिन प्राचीन काल में ये आसन मुख्यत: चक्रों को जागृत करने के लिए बने होंगे। उस समय इतनी बीमारियाँ नहीं थीं, वह जमाना ही दूसरा था। उस जमाने में, पाँच-छ: हजार साल पहले, ऋषि-मुनियों ने ये आसन केवल शरीर के सूक्ष्म केन्द्रों को जागृत करने के लिए बनाये होंगे।

आजकल स्त्रियाँ माथे के बीचोबीच टीका लगाती हैं, परन्तु वास्तव में उसका स्थान भृकुटी है। यहाँ हमेशा टीका लगा रहेगा तो संवेदना निरन्तर रहेगी, और वह संवेदना धीरे-धीरे आज्ञा चक्र को प्रभावित करेगी। इसीलिए भारत में महिलाएँ ज्यादा संवेदनशील होती हैं। घर में कुछ घटना होने वाली होती है तो इन्हें पहले से ही थोड़ा आभास होने लगता है, क्योंकि इनका आज्ञा चक्र थोड़ा जगा हुआ रहता है। यदि टीके को थोड़ा नीचे लगाएँ तो ज्यादा फायदा होगा।

बचपन में मैं देखता था कि मेरे पिताजी चन्दन को पीसकर गोल टीका बनाकर लगाते थे, फिर कपड़े में पानी लगाकर दबा देते थे। मैं सोचता था क्या ढोंग-पाखण्ड बना रखा है। उस समय कुछ समझ में नहीं आता था, मगर अब समझ में आता है।

अरब देशों में हमने लोगों से कहा कि भ्रूमध्य पर थोड़ा-सा कुमकुम लगाना शुरू कर दो। हमें तो उनका आज्ञा चक्र जगाना था। पहले जब हम कुमकुम लगाने को कहते तो वे लोग सोचते, अरे यह तो हमें हिन्दू बनाने आया है। डर के मारे नहीं लगाते। पर जब उन्हें मालूम पड़ गया कि आज्ञा चक्र को जगाने का कोई सीधा उपाय है नहीं, तब वे इस बात को स्वीकार करने लगे। हम तो उन लोगों को साफ-साफ कह देते हैं, अगर कुमकुम या भस्म लगाने में आपत्ति हो तो वार्निश पेन्ट लगा लेना!

कुमकुम और सिन्दूर में एक रसायन होता है, जिसे पारा कहते हैं। जब उसे टीके के रूप में भृकुटि पर लगाते हैं, तब वह संवेदना जगाता है, क्योंकि उस रसायन की स्नायुओं पर प्रतिक्रिया होती है। खैर यह तो अपने में बहुत बड़ा विज्ञान है, विस्तार से बताने में घण्टों लग जायेंगे।

इसी तरह से जालन्धर बन्ध विशुद्धि के लिए और मूलबन्ध मूलाधार के लिए होता है। वज्रोली, सहजोली और अमरोली, ये तीन प्रकार की मुद्रायें स्वाधिष्ठान चक्र की जागृति के लिए होती हैं। इनमें से एक पुरुषों के लिए, और शेष दो स्त्रियों के लिए होती हैं। उड्डियान बन्ध मणिपुर को जागृत करने के लिए है। इस प्रकार चक्रों को धीरे-धीरे जगाने के लिए, एक नहीं अनेक प्रकार के उपाय बतलाए गए हैं।

कुण्डलिनी शक्ति की जागृति

लोगों में सबसे बड़ी गलतफहमी यह है कि कुण्डलिनी के जागने से उत्पात होने लगते हैं। ऐसा सबको नहीं होता। तामसिक लोगों को तामसिक उत्पात होते हैं, राजसिक को राजसिक उत्पात, मगर जो सत्त्व प्रधान हैं उन्हें उत्पात नहीं होता। जब कुण्डलिनी का जागरण होता है, आसन-प्राणायाम अपने आप होने लगते हैं, मन्त्रों

का उच्चारण अपने आप होता है। आपको सच्ची बात बताते हैं, हम तो पहले-पहले शक्तिपात कराते थे, पर अब छोड़ दिया डर के मारे। कुछ लोग तो बहुत अच्छे ध्यान में चले जाते थे, पर कुछ उपद्रव करने लगते थे। अठारह-उन्नीस साल पहले की बात है, एक देहात की महिला ने सबके बीच नाचना शुरू कर दिया। मैंने सोचा कि ऐसा क्यों हुआ। चिंतन करने के बाद धीरे-धीरे सब समझ में आया। लोगों को भांग-गांजा पिला दो, जिसका जैसा स्वभाव होगा, वह वैसा ही करेगा। बहुत लोग हँसते ही रहते हैं, कुछ आँख बन्द करके चुप रहते हैं, कई बोलते ही जाते हैं, कितने लोग रसगुल्ले पर रसगुल्ला चाट जाते हैं। ये सब उनके व्यक्तिगत संस्कार हैं।

इसीलिए हमारी परम्परा में कहा गया है कि पहले मंत्र का खूब जप करना चाहिए। जप करिये, अनुष्ठान करिये, उपासना करिये, उससे चित्त की शुद्धि होती है। इसीलिए हमारे वैदिक धर्म में पंचदेवों की उपासना का विधान है। उपासना करो, मंत्र जप करो, चित्त शुद्ध होगा। चित्त शुद्ध होने के बाद फिर कुछ उत्पात नहीं होगा। जिनके मन में कुण्डलिनी को जागृत करने की भावना है, उन्हें निश्चित रूप से मंत्र और उपासना पर जोर देना चाहिए।

अब कोई यह पूछे कि कुण्डलिनी के जागने से अपने को फायदा क्या है, तो मैं आपको एक ही बात कह सकता हूँ कि जितने भी चक्र हैं, वे प्रतिभा के सोये हुये केन्द्र हैं। उनका मस्तिष्क से सीधा सम्बन्ध है। मन-मस्तिष्क में अलग-अलग क्षेत्र हैं जो मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर आदि चक्रों से सम्बन्धित हैं। वैज्ञानिक लोग भी बोलते हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क का अभी केवल दसवाँ भाग ही काम कर रहा है, शेष नौ भाग सोये हैं। अगर ये नौ भाग धीरे-धीरे सक्रिय हो जाएँ तो बहुत ही अच्छा होगा। मस्तिष्क की इन सोयी हुई प्रतिभाओं को जागृत करने के लिए ही कुण्डलिनी योग का अभ्यास करवाया जाता है।

हर चक्र से किसी-न-किसी प्रतिभा का सम्बन्ध है। हर चक्र का मनुष्य के व्यवहार पर असर पड़ता है। कोई चक्र स्मृति से सम्बन्धित है, तो कोई दृष्टि से। मणिपुर चक्र का पाचन-क्रिया से सम्बन्ध है। अनाहत का भावनाओं से और विशुद्धि का मनुष्य के शरीर के यौवन और काया-कल्प से। यह तंत्र शास्त्र का बड़ा गहन विषय है।

अंत में मैं यही कहूँगा कि कुण्डलिनी को जगाने के लिए रसायनों के सेवन या अन्य अप्राकृतिक उपायों की आवश्यकता नहीं। केवल कीर्तन करते-करते ही कुण्डलिनी का जागरण हो सकता है। मनुष्य कुछ न करे, केवल अपने मन को साफ रखे। अगर उसका चित्त शुद्ध रहे तो भी कुण्डलिनी जागती है। यह भी न हो सके, तो केवल निष्काम, निःस्वार्थ और अनासक्त भाव से कर्म करे, तो भी कुण्डलिनी का जागरण होता है। उपाय एक नहीं, अनेक हैं। उनमें से अपने योग्य सरल और सुबोध उपाय अपना लेना चाहिए।

–फरवरी 1974, योग सम्मेलन, कोरबा

क्रियायोग में गतिशील सजगता

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

लोग सोचते हैं कि जब वे योगाभ्यास करेंगे तो नीरवता और शान्ति का अनुभव करेंगे। वह योग का अन्तिम परिणाम हो सकता है, लेकिन प्रथम सोपान से लेकर अन्तिम सोपान तक की सम्पूर्ण यौगिक प्रक्रिया में शान्ति का नहीं, बल्कि निरन्तर गति का अनुभव होता है। जब तक गति है, शान्ति नहीं हो सकती। आप शान्ति का अनुभव तब करेंगे जब अपने लक्ष्य तक पहुँच जायेंगे और अपनी गति को समाप्त कर देंगे। जब आप चलते हैं उस समय शान्ति नहीं, निरन्तर गति होती है। जब आप अपने गन्तव्य तक पहुँच जाते हैं तब आप शान्ति से बैठकर सूर्यास्त के मनोहर दृश्य को निहार सकते हैं। मन से निपटने के लिए योग इसी सिद्धांत को अपनाता है।

क्रियायोग में भी अपने मन को व्यस्त रखने के लिए आप आरोहण और अवरोहण मार्ग में लगातार ऊपर-नीचे जाते हैं। इसके द्वारा आप एक ही समय में विभिन्न गतिविधियों के प्रति सजग बन सकते हैं जो एक सामान्य परिस्थिति में आपके

लिए सम्भव नहीं। अभी भी आप अपने शरीर और इन्द्रियों के माध्यम से बहुत-सी क्रियाएँ कर रहे हैं, किन्तु क्या आप इन सबके प्रति सजग हैं? नहीं। पर क्रियायोग में आप एक ही अभ्यास को करते समय अनेक गतिविधियों के प्रति सजग बनते हैं।

उदाहरण के लिए, क्रियायोग के प्रथम अभ्यास, विपरीतकरणी मुद्रा में आपको इस बात के प्रति सजग रहना पड़ता है कि आसन की सही स्थिति है या नहीं। साथ ही सन्तुलन बनाए रखना पड़ता है और कन्धों व हाथों पर पड़ने वाले भार को सही ढंग से व्यवस्थित करना होता है। इन सब चीजों के प्रति सजग रहकर आप शरीर की सही स्थिति अपनाते हैं। शारीरिक रूप से अपने आपको व्यवस्थित करने के पश्चात् आप शरीर की स्थिरता पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। उसके बाद आप श्वास के प्रति सजग बनते हैं, लेकिन कण्ठ में श्वास का अनुभव करने के बजाय आप इसे सहजता से प्रवाहित होते देखते हैं। श्वास का मानस दर्शन शारीरिक स्थिति को सही बनाए रखने में भी सहायक होता है—कण्ठ पर दबाव पड़ने के बावजूद भी आपको घुटन नहीं होती क्योंकि आप उस ओर ध्यान नहीं देते, बल्कि श्वास सजगता को शरीर के विभिन्न क्षेत्रों में ले जाने का माध्यम बन जाती है। उसके पश्चात् आप चक्रों पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं, जिससे वे सूक्ष्म, अतीन्द्रिय केन्द्र उद्दीप्त होने लगते हैं।

इस प्रकार आप शारीरिक और मानसिक अवस्थाओं के प्रति एक साथ सजग बनते जाते हैं और उन्हें व्यवस्थित करते जाते हैं। अब बतलाइये, इस प्रक्रिया में मन सक्रिय रहता है या शान्त? मन सक्रिय और निरंतर गतिशील रहता है। सजगता एक बिन्दु पर स्थिर नहीं है, बल्कि यह निरंतर गतिशील सजगता है। आपको अपनी सजगता मणिपुर चक्र से विशुद्धि चक्र तक और विशुद्धि से बिन्दु चक्र तक ले जानी होती है तथा फिर पुन: नीचे आना होता है। इससे धीरे-धीरे धारणा की क्षमता में भी वृद्धि होती है।

सेफ्टी वॉल्व

यदि क्रियायोग का अभ्यास सही ढंग से किया जाए तो इससे कुछ विशेष प्रकार के अतीन्द्रिय अनुभव और जागरण हो सकते हैं। इन जागरणों और अनुभवों से लाभान्वित होने के लिए यह जरूरी है कि आपने योग का प्राथमिक क्रम समुचित ढंग से कर लिया हो। इस प्राथमिक क्रम में हठयोग द्वारा इड़ा और पिंगला में संतुलन और राजयोग द्वारा चित्तवृत्ति निरोध के अभ्यास सम्मिलित हैं।

हठयोग के माध्यम से इड़ा और पिंगला में संतुलन लाकर वृत्तियों में स्थिरता लाने का मार्ग प्रशस्त होता है और राजयोग में वृत्तियों के निरोध का कार्य जारी रहता है। यदि इन दो प्रारम्भिक प्रक्रियाओं को न किया जाए तो आप क्रियायोग का अभ्यास नहीं कर पाएँगे। आप ध्यान लगाने या एकाग्रता लाने के लिए कितना ही प्रयास करें, लेकिन अपनी असंतुलित ऊर्जाओं और अशान्त वृत्तियों के कारण आप चेतना की गहराई में नहीं जा पाएँगे।

बिखरे हुए मन से आप क्रियायोग के अभ्यास से लाभान्वित नहीं हो सकते, बल्कि यूँ कहें कि इसका अभ्यास कर ही नहीं सकते। कुछ समय बाद आप ऊब जाएँगे। क्रियायोग की यही विशेषता है। इसे सीखते तो बहुत-से लोग हैं, किन्तु इसका नियमित और समुचित अभ्यास कुछ ही लोग करते हैं। बाकी लोग मानसिक रूप से इसके लिए तैयार नहीं होते। कुछ दिनों, हफ्तों या महीनों के पश्चात् क्रियायोग पृष्ठभूमि में चला जाता है और वे लोग पुन: आसनों के अभ्यास पर आ जाते हैं।

यह वास्तव में क्रियायोग का एक बहुत बड़ा वरदान है कि जो इसके लिए तैयार नहीं हैं, वे सीखने के पश्चात् भी इसका उपयोग नहीं कर पाएँगे। लेकिन जो इसके लिए तैयार हैं, वे सही ढंग से इसे सीखकर, शीघ्र परिणाम प्राप्त कर सकते हैं। उनके पास सभी आवश्यक सामग्री रहती है। वे हठयोग द्वारा इड़ा-पिंगला में संतुलन और राजयोग द्वारा चित्तवृत्ति निरोध के प्रशिक्षण से गुजर चुके होते हैं। उनका मन अन्नमय, प्राणमय और मनोमय कोशों के परे विज्ञानमय और आनन्दमय कोशों में जाने के लिए तैयार होता है। अन्नमय, प्राणमय और मनोमय कोशों में विक्षिप्तता नहीं रहती, क्योंकि उनकी वृत्तियाँ स्थिर हो गई होती हैं। यह क्रियायोग का आन्तरिक सेफ्टी वॉल्व है।

क्रियायोग एक सामान्य विधि नहीं है, क्योंकि बहुत कम लोग ही इसकी दो आधारभूत शर्तों को पूरा कर सकते हैं—प्राण शक्ति और चित्त शक्ति में संतुलन तथा मानसिक विक्षिप्तता और बिखराव का प्रबन्धन। यह केवल उन्हीं के लिए सम्भव है जिन्होंने योग के सही क्रम का अनुसरण किया है। यह क्रम यह सुनिश्चित करता है कि साधक पहले हठयोग के माध्यम से प्रथम दो कोशों, अन्नमय तथा प्राणमय को सम्हाल चुका है। फिर राजयोग में वह प्राणमय और मनोमय कोशों के साथ कार्य करता है और चेतना के सूक्ष्म आयाम, विज्ञानमय कोश तक पहुँचता है। उसके पश्चात् क्रियायोग में साधक विज्ञानमय कोश की गहराई में जा पाता है और अंतत: आनन्दमय कोश का अनुभव प्राप्त करता है। इस प्रकार क्रियायोग का अभ्यास हठयोग और राजयोग की पूर्णता पर निर्भर करता है। क्रियायोग रूपी भवन अपने आप ही खड़ा नहीं हो जाता, हठयोग ओर राजयोग इसकी नींव हैं।

—क्रिया योग मॉड्यूल 1, 7 नवम्बर 2016, गंगा दर्शन

तंत्र और वेदान्त में आत्मानुभूति

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

वैदिक कालीन ऋषि-मुनियों का सर्वोच्च उद्घोष था– *'अहं ब्रह्मास्मि'*, मैं वह ब्रह्म ही हूँ। उन ऋषियों की खोज अन्दर की ओर थी। उन्होंने आन्तरिक जीवन के गहन आयामों का अन्वेषण किया। मानसिक रूप से उन्होंने शरीर को परत-दर-परत खोला और पाया कि इसका सूक्ष्म सार इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियों पर ध्यान करने से वे मन की वृत्तियों और व्यवहारों से अवगत हुए। मन का विश्लेषण करने पर उन्हें अपने भीतर सुषुप्त सूक्ष्म ऊर्जा की अनुभूति हुई। उस ऊर्जा को जागृत कर उन्हें चेतना का, आत्मा का अनुभव हुआ और अपनी अन्तर्निहित शक्ति का व्यक्तिगत चेतना से संयोग कर उन्होंने पाया कि वे वास्तव में उस ब्रह्माण्डीय चेतना से जुड़े हैं, उसके ही एक अंश हैं।

तांत्रिक मत के अनुयायियों को भी काफी समय पूर्व, वैदिक युग के भी पूर्व इस तथ्य की अनुभूति हो गई थी। समस्त वैदिक तथा तांत्रिक दर्शन इसी अनुभूति पर आधारित हैं। चाहे वह शैव मत हो या वैष्णव या शाक्त, मूल विषय तो बस यही है कि मनुष्य जिस तत्त्व से बना है, उसका अन्वेषण करना।

कई हजारों वर्षों बाद भौतिक शास्त्र की यूनिफाइड फील्ड थ्योरी भी इसी दिशा की ओर संकेत करती है। इस सिद्धान्त के अनुसार समस्त सृष्टि एक समेकित समष्टि है तथा सभी पदार्थ, चाहे वे जड़ हों या चेतन, व्यक्त हों या अव्यक्त, एक-दूसरे से

जुड़े हुए हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो आप जो भी सोचते, बोलते, करते या अनुभव करते हो, वह एक लहर के समान अनन्त अंतरिक्ष में फैलता है जहाँ वह अन्य स्रोतों से आ रही लहरों से मिलता, जुड़ता और टकराता है। यह एक अति गहन विचारधारा है जो प्रत्येक मनुष्य को सर्वव्यापकता प्रदान करती है, और मानव जीवन को ऐसा महत्त्व एवं प्रतिष्ठा प्रदान करती है जो हमारी कल्पना के बिल्कुल परे है।

हालाँकि मनुष्य ने अपार धन-सम्पत्ति और भोग-विलास की सामग्री अर्जित कर ली है, तथा शत्रुओं से अपने बचाव की भी बेहतरीन व्यवस्था कर ली है, परन्तु फिर भी वह अपने आप को असुरक्षित पाता है। वह जानता है कि उसके जीवन की अवधि कम है। जब उसे अलविदा कहना होगा तब वह अपने साथ उस कवच को साथ नहीं ले जा सकेगा जो सदा उसकी रक्षा किया करता था। उसे खाली हाथ ही जाना होगा। इसलिए *अहं ब्रह्मास्मि* की उद्घोषणा मनुष्य को आशा और सान्त्वना प्रदान करती है। यद्यपि मनुष्य धन-सम्पत्ति और पद-प्रतिष्ठा बटोरने के लिए जीता है, किन्तु ये लक्ष्य उसे सीमित संतुष्टि ही प्रदान करते हैं। भौतिक उपलब्धियों से प्राप्त सुख में स्थायित्व नहीं होता। वास्तविक एवं चिरस्थायी आनन्द की प्राप्ति तो तभी होगी जब मनुष्य को अपने आपका बोध होगा।

स्वयं की अनुभूति

अपने आपको जानने का, अनुभव करने का अर्थ क्या है? आप जानते हैं कि आप पुरुष हैं या स्त्री, भारतीय हैं या अमेरिकन, हिन्दू हैं या मुस्लिम, अमीर हैं या गरीब, सुन्दर हैं या कुरूप, बुद्धिमान हैं या मूर्ख, साँवले हैं या गोरे, शिक्षित हैं या अशिक्षित, संत हैं या पापी, आस्तिक हैं या नास्तिक, उदार हैं या कृपण, लेकिन तांत्रिक एवं वैदिक ऋषि कहते हैं कि जहाँ तक आत्मबोध का सवाल है, ये सभी चीजें अप्रासंगिक एवं महत्त्वहीन हैं। आत्मा की खोज में किसी के लिंग, राष्ट्रीयता, सामाजिक पद-प्रतिष्ठा, मत या धर्म का कोई मूल्य नहीं होता। आत्मा का सम्बन्ध तो एक अलग ही आयाम से होता है। आत्मान्वेषण कोई सामाजिक, सांस्कृतिक या धार्मिक मामला नहीं है।

ऋषि गण इस बात को जानते थे कि तीन गुणों के फलस्वरूप मनुष्य के ज्ञान और व्यवहार में बहुत अंतर दिखलाई देता है—कभी वह आसुरी होता है, कभी मानवीय तो कभी दैवी। इन तीन गुणों में सत्त्व दिव्यता का सूचक है, रजस् मानवीय स्वभाव का और तमस् आसुरी वृत्ति का। हालाँकि यह विभाजन एक मोटे तौर पर ही है, किन्तु यह सत्य है कि ये तीनों गुण हमारे स्वभाव के अभिन्न अंग हैं। ये तीन गुण हम सभी में विद्यमान होते हैं और निरंतर हमारे विचारों, कर्मों, भावनाओं एवं समस्त जीवन को निदेशित करते रहते हैं। ये हमारे स्वभाव को, हमारी रुचियों एवं प्रवृत्तियों को निश्चित करते हैं। इन्हीं गुणों के आधार पर हम अपने जीवन के सभी निर्णय लेते हैं।

हम अपने जीवन में जो भी निर्णय लें, जो भी रास्ता अपनाएँ, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम इस संसार में किस प्रयोजन से आए हैं। वह प्रयोजन तो मात्र आत्मानुभूति है। हमारे शास्त्रों में मानव जीवन को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है, क्योंकि एक मनुष्य के रूप में ही हम अपने सार तत्त्व को समझ सकते हैं। सृष्टि के अन्य जीव तो अपने अस्तित्व के बोध के बिना ही जीते हैं। यह तो मनुष्य ही है जिसे अपने समस्त कृत्यों की, और उनके माध्यम से अपने अस्तित्व की जानकारी रहती है।

मनुष्य देश, काल और पदार्थ से सदा अवगत रहता है। हालाँकि पेड़-पौधे और पशु-पक्षी भी चेतन होते हैं, किन्तु उन्हें ऐसी अनुभूति नहीं होती। कुत्ता भौंकता है, लेकिन उसे यह नहीं पता कि वह भौंक रहा है। वृक्ष फल देता है, किन्तु उसे इस बात की अनुभूति नहीं कि वह ऐसा करता है। अनेक प्रकार के जीवों को संवेदना होती है, पसन्दगी और नापसन्दगी होती है, तीक्ष्ण प्रतिक्रिया और स्मरण शक्ति भी, फिर भी उन्हें देश और काल में अपने अस्तित्व का ज्ञान नहीं होता। इस दृष्टि से मनुष्य विशिष्ट है, क्योंकि वह देश-काल के दायरे में और उससे परे भी अपने अस्तित्व के प्रति सजग हो सकता है। वह स्वत: अपनी भौतिक सीमाओं से ऊपर उठकर देश-काल से परे जा सकता है, और उस ब्रहाण्डीय चेतना का बोध कर सकता है जिसका वह एक अभिन्न अंग है और जिससे से वह उत्पन्न हुआ है। यही मानव जीवन का लक्ष्य है।

– 'विज्ञान भैरव तंत्र' से उद्धृत

वेदान्त दर्शन

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

सभी दर्शनों में वेदान्त दर्शन का स्थान प्रथम है। यह ऐसा दर्शन है, जिसमें मानव विचारधारा पराकाष्ठा पर पहुँच गयी है। इसके मूलभूत विचारों को ग्रहण करने के लिये सूक्ष्म और तीव्र बुद्धि की आवश्यकता है। यह अपने निर्णयों और सिद्धांतों को जिस साहस और निर्भीकता के साथ प्रस्तुत करता है, वह अनुपम है। यह हर प्रकार की संकीर्ण धारणाओं और मान्यताओं से सर्वथा मुक्त है।

वेदान्त कोई मत, सम्प्रदाय या उपासना विधि नहीं है। यह सत् का विज्ञान है। यह निर्भय घोषणा करता है कि तू वास्तव में अमर और व्यापक आत्मा है, विश्वात्मा है, परब्रह्म है। साथ ही वेदान्त बहुत व्यावहारिक भी है। यह किसी अव्यावहारिक आदर्श का उपदेश नहीं देता। वामदेव, जड़ भरत, श्री शंकराचार्य तथा कई अन्य लोगों ने इसका साक्षात्कार किया है और प्रत्येक कर सकता है। इसके लिये केवल नियमित और सतत् साधना की आवश्यकता है। श्रुतियों के सिद्धांतों, गुरु के वचनों और अपने पर पूर्ण विश्वास होना चाहिये।

वेदान्त संन्यासियों और हिमालय में रहनेवाले तपस्वियों की ही एकाधिकार सम्पत्ति नहीं है। उपनिषदों के अध्ययन से पता चलता है कि अपने राज-काज में अतीव व्यस्त रहने वाले कई क्षत्रिय राजाओं ने भी इस ब्रह्मज्ञान को पाया था। उन्होंने ब्राह्मणों तक को उपदेश दिया था।

वेदान्त का अर्थ है 'दासता से मुक्ति'। यह सबको स्वतंत्र कर देता है, सबको गले लगाता है। यह उपनिषदों का, परमहंस संन्यासियों का धर्म है। वेदान्त का कुल सार यही है– 'मैं सर्वव्यापी हूँ, स्वयं प्रकाश हूँ, अमर हूँ, अखण्ड हूँ, अविनाशी हूँ और सच्चिदानंद ब्रह्मस्वरूप हूँ।' श्री शंकराचार्य के मतानुसार वेदान्त का मूलभूत सिद्धांत निम्न श्लोकार्ध में बड़े सुन्दर ढंग से संगृहीत है– *ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः*– 'ब्रह्म सत्य है, यह जगत् मिथ्या है और यह जीव ब्रह्म ही है, और कुछ नहीं है।'

निष्ठावान् साधक के लिये आत्मा एक अमूल्य निधि है। कर्म के द्वारा निष्पन्न होनेवाले फल नाशवान् हैं, अतः विवेकी पुरुष कर्म के प्रति कोई आसक्ति नहीं रखता। वह केवल आत्मसाक्षात्कार के लिये ही प्रयत्नशील रहता है। मैत्रेयी ने ऋषि याज्ञवल्क्य के चरण-कमलों में बैठकर उस आत्मा का ज्ञान प्राप्त किया जो अविनाशी है, असंग है, मुक्त है और दुःख-कष्टों से अछूता है। यही सही शिक्षण है।

आप सिंह हैं, परन्तु वर्षों से मेमना बना दिये गये हैं। अब जाग उठिये। अब फिर मेमना न बनने का निश्चय कीजिये। गरज उठिये– ॐ ॐ ॐ।

कभी-कभी सपने में आप देखते हैं कि आप मर गये हैं और आपके सगे-संबंधी रो रहे हैं। उस कल्पित मृत्यु में भी आप अपने सगे-संबंधियों को रोते हुये देखते हैं, सुनते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि वास्तविक मृत्यु में भी आपका व्यक्तित्व रहता है। इस भौतिक कोश के निकल जाने पर भी आप जीवित रहते हैं। वह सत् ही आत्मा है, महान् अहं है।

आपको स्पष्ट अनुभव होता है कि आप हैं। यह इस बात का समर्थक है कि भगवान हैं। अस्तित्व जो-कुछ भी है, वह ब्रह्म या ईश्वर ही है। अपने पास सब सुख-सुविधा और सम्पत्ति के होते हुये भी आपको कुछ अभाव-सा अनुभव होता रहता है, पूर्णता का अनुभव नहीं होता है। सर्वत: पूर्ण परमात्मा को अपने साथ संयोजित करने पर ही आप पूर्णता का अनुभव कर पायेंगे। जब कभी आपके हाथों से कोई गलत काम हो जाता है तो आप भय अनुभव करते हैं, आपके अन्त:करण में चुभता है। इन सबसे प्रमाणित होता है कि भगवान हैं और वह आपके विचारों और कर्मों का साक्षी है।

किसान ने भले ही महाराजा को न देखा हो, तब भी वह जानता है कि राज्य पर शासन करने वाला एक महाराजा है, क्योंकि राज्य में सारा कारोबार और व्यवस्था दिखती है। इसी प्रकार यद्यपि भगवान को किसी ने प्रत्यक्ष नहीं देखा है, तब भी सृष्टि में जो व्यवस्था और नियम है, उससे भगवान के अस्तित्व को समझा जा सकता है। इस मिट्टी के पुतले शरीर को कौन नचा रहा है? इस शरीर का सूत्रधार कौन है? उसे पहचानो।

मन, वाणी, कान, आँख आदि इन्द्रियाँ सोयी रहती हैं, तब प्राण अकेला जागता रहता है। इस प्राण के स्पंदन का कारण कौन है? इस प्राण का आधार कौन है? वह ब्रह्म है। वही सारे जगत् का स्रोत है। यद्यपि यह सारा दृश्य प्रतिक्षण बदलता रहता है और एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न है, तथापि इन सबके अन्दर बसने वाला वह जो परम सत्य है, वह अपरिवर्तनीय है और सबमें समान है।

यह संसार चक्र अनादि है। कर्म भी अनादि है। जो अनादि है वह अनंत भी होता है। यह सर्वमान्य नियम है। इसलिये इस संसार का कोई अंत नहीं है, परन्तु जो आत्मदर्शी योगी है, उसके लिये यह संसार समाप्त हो जाता है।

लोग अपनी इन्द्रियों से भ्रमित हैं। जो परिवर्तनशील और विनाशी है, वह सत्य नहीं होता। मन या वस्तु मात्र का, विश्व और उसकी सृष्टि का अस्तित्व सत्य नहीं है। एकमात्र ब्रह्म ही अपनी महिमा में विराजमान है, यही परम सत्य है। एकमात्र ब्रह्म का अपरोक्ष साक्षात्कार ही जीव को जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त कर सकता है। यहाँ कोई दूसरा उपाय नहीं है। श्वेताश्वतरोपनिषद् ने जोर देकर कहा है–

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमस: परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्य: पन्था विद्यतेऽयनाय॥3.8॥

अर्थात् मैं उस महान् पुरुष को जानता हूँ जो आदित्य के समान तेजयुक्त है, जो अज्ञानरूपी अंधकार से परे है। उसी को जानने से मृत्यु को पार कर अमरत्व प्राप्त किया जा सकता है, परम आनंद की प्राप्ति के लिये दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

ब्रह्म-साक्षात्कार मनुष्य के लिये संभव है। कई लोगों ने आत्मदर्शन किया है, कई लोगों को निर्विकल्प समाधि का आनंद मिला है। श्रीशंकराचार्य, श्रीदत्तात्रेय, मंसूर, शम्स तबरीज, प्रभु ईसा और भगवान बुद्ध आदि ने आत्मदर्शन किया था और इन सबको अपरोक्षानुभूति हो गयी थी। लेकिन एक व्यक्ति स्वयं जो अनुभव कर चुका है वह दूसरों को अनुभव नहीं करा पाता है, क्योंकि उसका कोई साधन नहीं है। इन्द्रियों द्वारा जो साधारण ज्ञान प्राप्त होता है उसका भी अनुभव नहीं कराया जा सकता। जिसने मिश्री नहीं खायी हो उसे उसका स्वाद कैसे समझाया जाए? जन्मान्ध को रंगों का परिचय कैसे कराया जाए? गुरु शिष्य के लिये यदि कुछ कर सकता है तो यही कि सत्य को पहचानने का मार्ग बता सकता है।

अनंतकाल से वेद कहते आये हैं– *एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति*– सत्ता एक ही है जिसे योगी कई नामों से पहचानते हैं। परमेश्वर, ब्रह्म, अल्लाह, भगवान,

येहोवा आदि सब एक ही हैं। मैं उस परमसत्ता की उपासना करता हूँ, जो शाश्वत है, आनंद और प्रज्ञा का अखण्ड पुञ्ज है, प्रज्ञा के वैविध्य के आधार पर योगीजन जिसे अनेकविध कहते हैं। उसे आप विश्राम, शान्ति, पूर्णता, स्वतंत्रता, जीवन की सिद्धि, निर्वाण, निर्विकल्प समाधि, सहजावस्था, कैवल्य या मोक्ष आदि किसी भी नाम से पहचानें, पर आप जाने-अनजाने अपनी सभी प्रवृत्तियों के द्वारा उसी की ओर बढ़ रहे हैं, क्योंकि इन परिवर्तनशील नश्वर सांसारिक विषयों से आपका पूर्ण समाधान नहीं होता है। आपका प्रत्येक पग उस सच्चिदानंद की ओर ही उठ रहा है। चाहे कोई आवारा या लफंगा क्यों न हो, वह भी उसी ब्रह्म के अमर साम्राज्य की ओर ही जा रहा है, यद्यपि उसका मार्ग उलझा हुआ और टेढ़ा है।

ब्रह्म शुद्ध चैतन्य है। वह कालातीत है। जो कालातीत है, वही अविनाशी है। जीव दु:खों से भरा है, ब्रह्म दु:खरहित है। जीव बद्ध है, ब्रह्म पूर्णत: मुक्त है। जीव अल्पज्ञ है, अल्पशक्तिमान है, परिच्छिन्न है और एकदेशीय है। ब्रह्म सर्वशक्तिमान है, सर्वज्ञ है, अपरिच्छिन्न है और सर्वव्यापी है। ब्रह्म वह सर्वोत्कृष्ट पुरुष है जो सब प्राणियों के हृदय में विराजमान है। वह गुरुओं का गुरु है, देवताओं का देवता है, ईश्वरों का ईश्वर है, सूर्यों का सूर्य है, प्रकाशों का प्रकाश है। वह असीम आनंद और ज्ञान का सागर है, वह सर्वाधार है। वह अजन्मा है, मरणशून्य है, काल-देश-कारण-गति-परिवर्तन से शून्य है।

आप अमर हो। गोली-बारूद या किसी प्रकार के अस्त्र से उस आत्मा का नाश नहीं किया जा सकता है। वह अच्छेद्य है, अजेय है, अक्षुण्ण है। उसी अन्तरात्मा में बसो। विचारों से परे हो कर बसो। उसमें शोक या भय का कोई स्थान नहीं है। साहसी बनो और प्रसन्न रहो। जिसने यह अनुभूति पा ली है कि 'मैं वह परम आत्मा हूँ जो अपरिवर्तनीय, स्वयंप्रकाशी, पूर्ण, शुद्ध, नित्य, अविभाज्य, सर्वव्यापी है', वह बंधन से मुक्त हो जाता है। जिसने यह अनुभूति नहीं पायी, वह बंधन में रहता है।

ब्रह्म से विश्व की उत्पत्ति होने से यह कोई आवश्यक नहीं कि ब्रह्म भी विकृत हो जाए, परिवर्तनशील हो जाए। ब्रह्म स्वयं निर्लिप्त रहकर विश्व की सृष्टि करता है। ब्रह्म अपनी शक्ति के द्वारा अनन्त नाम और रूप प्रदान कर सकता है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। जगत् तो केवल दिखावा है। ब्रह्म ही वृक्ष, पर्वत, नदी, नक्षत्र आदि नाना रूपों में दिखता है। इन सारी आकृतियों को निर्माण करने के लिये उसे हाथों या उपकरणों की कोई आवश्यकता नहीं। वह चैतन्य है, स्वयंप्रकाश प्रज्ञा है। केवल संकल्पमात्र से वह असंख्य ब्रह्माण्डों का सृजन कर सकता है। जिस प्रकार बीज के अंदर पूरा वृक्ष प्रकट करने की क्षमता होती है, वैसे ही विश्व को प्रकट करने की क्षमता ब्रह्म का स्वभाव है। जहाँ अस्तित्व है उसके साथ सृजन भी रहता है। सीमित बुद्धि से यह समझना मुश्किल है कि यह विश्व कैसे है और क्यों है तथा एक ही ब्रह्म में असत्, जड़ता और दु:ख से मिश्रित अविद्या तथा सत्-चित्-आनंद-रूपी

गुण एक साथ कैसे रह सकते हैं और क्यों हैं? ब्रह्मज्ञान प्राप्त कीजिये, उसके बाद ही इस अतिप्रश्न का उत्तर मिल सकेगा।

वेदों में एक स्थान पर ब्रह्म को अवाङ्मनस-गोचर अर्थात् वाणी और मन की पहुँच से परे बताया गया है तो दूसरे स्थान पर कहा है, 'मनसैव द्रष्टव्यम्' अर्थात् ब्रह्म को मन से ही देखना चाहिये। इन दोनों में कोई विसंगति या विरोध नहीं है। इसका अर्थ यही है कि जो मन शुद्ध हो, सूक्ष्म हो और तेज हो तथा जो अहंकार, मोह, काम, क्रोध आदि दोषों से मुक्त हो और साधन चतुष्टय से सम्पन्न हो, उसी मन से ब्रह्म का साक्षात्कार किया जा सकता है। शुद्ध मन साक्षात् ब्रह्म ही है।

देश, काल, चित्त, मन, जीव और माया वास्तव में हैं ही नहीं। एकमात्र अनन्त, अद्वितीय ब्रह्म है। वही अपनी अखण्ड महिमा में, अपने स्वरूप में विराजमान है। उसका कोई बाहरी आवरण नहीं है, वह नि:स्पन्द है, आदिमध्यावसानशून्य है। हमेशा चिन्तन करो, 'जो कुछ है, एकमात्र ब्रह्म ही है। ब्रह्म ही सत्य है। मैं ब्रह्म हूँ।'

श्रीशंकराचार्य कहते हैं, 'बाहर भी कुछ है, उससे इनकार नहीं किया जा सकता, परन्तु वह आभास है। वह केवल विवर्त है, अध्यारोप है। जैसे साँप रस्सी का विवर्त है, अंगूठी स्वर्ण का विवर्त है, वैसे ही यह विश्व, यह शरीर, यह मन, प्राण, ये इन्द्रियाँ सब ब्रह्म के विवर्त हैं।' विवर्तवाद श्रीशंकराचार्य का वाद है।

आत्मा शुद्ध, शाश्वत, अपरिवर्तनीय, अमर और स्वयंप्रकाश है, जबकि शरीर अपवित्र है, परिवर्तनीय है, विनाशी और जड़ है। फिर भी अज्ञानी लोग दोनों को एक समझते हैं। क्या इससे बढ़कर कोई दूसरा अज्ञान हो सकता है?

जलती लकड़ी को घुमायें तो ऐसा भ्रम होता है मानो आग का ही कोई वर्तुल (अलात-चक्र) घूम रहा हो। उसी प्रकार सारे दृश्य जगत् की विविधता भी है। जैसे वह अलात-चक्र भ्रांति है, वैसे ही यह विश्व भी भ्रांति है। एक ब्रह्म ही सत्य है जो पदार्थमात्र का साक्षी है, विश्व का आधार है। भ्रांति का कारण है अविद्या। आत्मज्ञान से अविद्या हटायी जाए तो नाम और रूप भी नष्ट हो जाते हैं। तब सर्वत्र एक आत्मा ही दिखायी देगी।

हे मानव, आप दिव्य हो, अमर हो। आप राजाओं के राजा हो। यह भ्रम दूर कर दो कि आप शरीर हो। उस सर्वव्यापी चैतन्य आत्मा या ब्रह्म से एकरूप होओ। आपका वास्तविक और अपरिहार्य स्वभाव सच्चिदानंद है। इसका अनुभव करो।

मन में किसी प्रकार की आंकाक्षा मत रहने दो। किसी के प्रति आसक्ति या लगाव मत रखो। एकमात्र अक्षर, अविनाशी ब्रह्म से प्रेम करो। द्वैतरहित मार्ग अपनाओ। संसार में रहकर भी संसार से परे रहो। अपने को शरीर और मन से अलग करो। उस आत्मा के साथ एकरूप होओ। मैं और तुम का भेद-भाव न रखो। अपनी वृत्तियों और विचारों के साक्षी रहो। अनेक में एक को पहचानो। प्राणिमात्र में अमर आत्मा को पहचानो।

जहाँ कोई साधन है तो उसका उपयोग करनेवाला भी कोई-न-कोई होना चाहिये। मन, बुद्धि आदि साधन हैं तो उनका प्रयोग करनेवाला, उनको चलानेवाला भी कोई होना ही चाहिये। जैसे कोई घर किसी-न-किसी के निवास के लिये है, वैसे ही आँख, कान, नाक, हाथ, पैर आदि भी इनके स्वामी के उपयोग के लिये ही हैं और वह स्वामी इनसे निश्चित ही भिन्न है। वह संचालक वास्तव में असीम 'मैं' है। वह अन्त:शास्ता है, अमर है, शुद्ध चैतन्य है। कानों की जो सुनने की शक्ति है, आँखों की जो देखने की शक्ति है, वह सारा उसी चैतन्य पर अवलम्बित है। जिस प्रकार चन्द्रमा सूर्य से प्रकाश लेता है, उसी प्रकार इन्द्रियाँ अपनी शक्ति उस आत्मा से लेती हैं जो उनका संचालक है। इसलिये यह कहना सर्वथा संगत है कि आत्मा कानों का कान है, आँखों की आँख है, प्राणों का प्राण है और मनों का मन है।

अग्नि राख से दबी है। तलवार म्यान से ढकी है। सूर्य पर बादल छाये हैं। नारंगी छिलके से ढकी है। रत्न पर धूल चढ़ी है। गद्दे के अंदर स्प्रिंग है। बिछौना चादर के नीचे है। इसी प्रकार रक्त, मांस, हड्डी आदि पदार्थों के नीचे आत्मा छिपी है।

यही चिन्तन करना चाहिये कि चेतना इस भौतिक शरीर के बाहर है। तब उस विश्व-चैतन्य के साथ एकरूपता सध सकेगी। शीघ्र ही साक्षी-भाव प्राप्त हो सकेगा। तब मालूम होने लगेगा कि यह शरीर हमारे हाथ का साधन है। जिस तरह हाथ में छड़ी लेकर हम चला करते हैं उसी प्रकार यह शरीर भी एक छड़ी जैसा होगा।

क्रिकेट खेलनेवालों से खेल देखने वाले अधिक आनंद लेते हैं। खेलने वालों के मन में हार-जीत का विचार और उसी का कौतूहल भरा रहता है। उनका मन शांत नहीं रह सकता। हम विश्व के ही नहीं, अपने भी साक्षी बन सकें। उस साक्षी के साथ एकरूप हो सकें तो हम भी आत्मानंद पा सकेंगे, आत्मज्ञान पा सकेंगे।

प्रारब्ध पिछले जन्म का पुरुषार्थ है। संचित कर्म अविद्या पर निर्भर है। क्रियमाण कर्म अहंकार पर अवलम्बित है। प्रारब्ध कर्म भौतिक शरीर से संबंधित है। ज्ञानोदय के कारण जीवनमुक्त का सारा अज्ञान नष्ट हो जाता है। इससे संचित कर्म भी नष्ट हो जाते हैं। जीवनमुक्त में अहंकार नहीं होता है, अत: क्रियमाण कर्म भी नष्ट हो जाते हैं। क्योंकि वह सर्वव्यापी ब्रह्म से एकरूप हो जाता है, इसलिये उसका शरीर भी नहीं रहता है। इस प्रकार आत्मज्ञान प्राप्त करने से तीनों कर्मों का नाश हो जाता है।

भाग्य अपने ही कर्मों का फल है। सब अपने-अपने भाग्य के स्वयं निर्माता हैं, स्वामी हैं। विचार करने का तरीका परिवर्तित कर दीजिये। 'मैं शरीर हूँ' इस प्रकार के अशुद्ध विचार को छोड़कर विचार कीजिये 'मैं आत्मा हूँ'। आज हमारी यह सोचने की आदत हो गयी है कि 'मैं शरीर हूँ, मैं मन हूँ, मैं प्राण हूँ, मैं इन्द्रियाँ हूँ।' इस आदत को इसमें बदलना चहिये कि 'मैं ब्रह्म हूँ, मैं सर्वव्यापी हूँ।' तब भाग्य पर विजय प्राप्त हो सकेगी। यदि तिरछा अक्षर लिखने की किसी की आदत है तो वह उसे बदलकर सीधा लिखने की आदत डाल सकता है। इसी प्रकार सोचने की भी आदत बदली जा सकती है। आदत पर विजय मिली कि भाग्य पर विजय मिली।

'मैं शरीर हूँ और यह संसार सत्य है' इस प्रकार का विपरीत भावना रूपी साँप फुफकारने लगे तो 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार की ब्रह्म-भावना का डण्डा लीजिये और अटूट आत्मभावना की धारा अखण्ड चलने दीजिये। देहाध्यास दु:ख का कारण है। आत्मज्ञान प्राप्त होने पर कुछ भी दु:ख नहीं रहता, भले ही शरीर में कोई रोग हो। ज्ञानी देहभाव से ऊपर उठ जाता है। शारीरिक चेतना से ऊपर उठना चाहिये और दु:ख-रोग-विहीन आत्मस्वरूप बनना चाहिये। तब सारे दु:ख दूर होंगे। नींद आने पर भारी बीमारी के होते हुए भी शरीर में कोई पीड़ा नहीं रहती। क्लोरोफॉर्म देकर बेहोश कर दिया जाए तो पैर काट दें, तब भी पता नहीं चलता। दु:ख का कारण है शरीर और मन का संयोग। यदि ध्यान योग के द्वारा मन को शरीर से हटा कर आनंदमय आत्मा में लीन कर दिया जाए तो लाख बीमारी के होने पर भी कोई दु:ख नहीं रहेगा। यह ज्ञान योग साधना है।

प्रारब्ध को तो भोगना ही पड़ता है। इसलिये शरीर बीमार पड़ता है, पर जीवनमुक्त पर किसी दु:ख का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। बाहर से देखने वालों को लगता है कि योगी भी बीमारी से पीड़ित है, पर यह भूल है। श्रीरामकृष्ण परमहंस गले के कैन्सर से पीड़ित थे, बुद्ध को पुरानी पेचिश थी, श्रीशंकराचार्य को बवासीर थी, परन्तु उन लोगों को कोई दु:ख नहीं था। डॉक्टरों ने श्री रामकृष्ण से पूछा, 'क्यों आप यूँ दु:ख भोगते हैं? ऑपरेशन क्यों नहीं करवा लेते?' उन्होंने उत्तर दिया, 'मैंने अपना मन काली माँ को सौंप दिया है, फिर मैं शरीर के बारे में कैसे ध्यान दूँ? इस माँस-पिण्ड की ओर मन को वापस कैसे लाऊँ? मुझे तो सदा आनंद है।'

आत्मा का स्वरूप और अनुसंधान

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

यदि आत्मा सत्-चित्-आनन्द है तो वह दु:ख, सन्ताप, चिन्ता, द्वन्द्व और अन्य शक्तियों का शिकार क्यों होती है? हम कहते हैं शिवोऽहम्, जिसका अर्थ है 'मैं शिव हूँ', 'मैं वह आनन्दस्वरूप आत्मा हूँ।' यह आनन्दमय आत्मा क्यों दु:ख और सुख का अनुभव करती है? इस प्रकार का प्रश्न बहुतेरे लोगों के मन में उठता है, जो आत्मा और उसके स्वरूप तथा स्वभाव की वास्तविक बात को समझना चाहते हैं। संक्षेप में इसका उत्तर देता हूँ।

जिस प्रकार एक राजा स्वप्न में अपने आप को एक भिखारी के रूप में देखता है, किन्तु वास्तव में वह राजा है, उसी प्रकार आत्मा दु:ख और सुख की कल्पना कर लेती है। यही शास्त्रों का कहना है। जब आत्मा पूर्ण आनन्द और ज्ञानमय है तो यह भ्रम क्यों? क्यों वह अपने आपको दूसरा समझ लेने की गलती करती है?

मैं रात्रि में सोता हूँ और स्वप्न देखता हूँ कि मैं एक गृहस्थ हूँ, पर वास्तव में मैं संन्यासी हूँ। मैं सत्य को तभी जान पाता हूँ, जब मैं जग जाता हूँ। जिस प्रकार मैं संन्यासी था, और अब भी संन्यासी हूँ, उसी प्रकार वास्तव में मैं आत्मा हूँ, यद्यपि किसी प्रकार मैं अपने वास्तविक स्वभाव को भूल गया हूँ।

अब प्रश्न यह उठता है कि यह आत्मा भ्रम में क्यों? क्यों और कब इस भ्रम के आवरण ने आत्मा को ढँक लिया? कोई भी इसका उत्तर ठीक ढंग से नहीं दे सकता। वेद और शास्त्र इस प्रश्न पर चुप हैं। हम केवल यही कह सकते हैं कि महाप्रभु स्वयं एक अद्भुत खेल चला रहे हैं। बिजली का बल्ब चमकता है, पर पंखा बिल्कुल स्थिर रहता है, यद्यपि दोनों ही विद्युत-घर की तारों के माध्यम से जुड़े रहते हैं। क्यों? इसलिए कि बल्ब का प्लग लगा हुआ है, किन्तु पंखे का अलग किया हुआ है। उसी प्रकार जब हम स्वयं को दुनिया और उसकी वस्तुओं से जोड़ लेते हैं, तो हम उनसे प्रभावित होते हैं और परिणामस्वरूप हमें सुख और दु:ख का अनुभव होता है।

दु:ख की जड़, उसका कारण कहाँ है? हम उसे अनादि मान लेते हैं, किन्तु मेरे विचार में दु:ख की जड़ हमारे अन्दर ही है, दूर नहीं। इसकी जड़ हमारे मन और इन्द्रियों में है। यदि योग द्वारा हम अपने मन को नियन्त्रण में रखें, अथवा उसे प्रभु के पद्म-चरणों में समर्पित कर दें तो हमारे दु:ख समाप्त हो जाएँगे। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और प्राण के साथ पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों के संयोग से हम भूतकाल का सुख और दु:ख के रूप में अनुभव करते हैं। जब जीवात्मा उन्नीस तत्त्वों के साथ अपने को सम्बन्धित करता है, तब वह सुख और दु:ख का बोझा बन जाता है।

यह शरीर क्षेत्र है, इसमें एक क्षेत्रज्ञ रहता है। यह क्षेत्रज्ञ ही शिव, राम या सत्-चित्-आनन्द आत्मा है, उसे तुम चाहे जिस-किसी नाम से पुकारो। जब यह क्षेत्रज्ञ अपने आपको क्षेत्र और उसके आवश्यक तत्त्वों के साथ एकरूप कर लेता है, तब यह क्षेत्र अर्थात् शरीर में होने वाली सभी घटनाओं का अनुभव करता है।

एक ताजा नारियल लो। उसके ऊपरी छिलके को तोड़ो। भीतर की गिरी भी टूट जाएगी। अब दूसरा सूखा हुआ नारियल लो और तोड़ो। ऊपरी छिलका टूट जाएगा, किन्तु भीतर की गिरी नहीं टूटेगी। क्यों? इसलिए कि गिरी ने अपने आपको ऊपरी छिलके से अलग कर दिया था। इसी प्रकार यदि हम अपनी आत्मा को शरीर से अलग समझ लें तो हम शरीर में होने वाली घटनाओं से अप्रभावित रहेंगे।

दूसरा उदाहरण लो। रमेश और सुरेश एक दूसरे से अपरिचित हैं। रमेश के परिवार में कोई मर जाता है। सुरेश उस मृत्यु से प्रभावित नहीं होगा, क्योंकि रमेश से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। दूसरे वर्ष सुरेश की लड़की से रमेश की शादी हो जाती है। इसके बाद भविष्य में सुरेश बराबर रमेश के परिवार की प्रत्येक घटना

से निश्चय ही प्रभावित होगा, क्योंकि उसने उससे अपना सम्बन्ध जोड़ लिया है। इसी प्रकार आत्मा ने प्रकृति के साथ अपना सम्बन्ध अनादि काल से जोड़ रखा है।

तब हमें आत्मा को प्रकृति से अलग करने के लिए करना क्या चाहिए? जिस प्रकार दूध से मक्खन और धान से चावल निकाला जाता है, उसी प्रकार हमें साधना के द्वारा पुरुष तत्त्व और प्रकृति तत्त्व को अलग-अलग करना है। जिस प्रकार कच्चे माल से लोहे को भट्ठी में तपा कर अलग किया जाता है, उसी प्रकार हमें सत्य को असत्य से योगाग्नि द्वारा अलग करना होगा। जिस प्रकार हम कच्चे माल से इतर तत्त्व हटा कर सोना प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार हमें प्रकृति की तहों में छिपी हुई सुप्त आत्मा को खोजना तथा उसे प्रकृति से अलग करना है। इसका उपाय साधना ही है।

मान लो, तुम जंगल में जाते हो। एक शेर तुम्हारे सामने से तुम्हें बिना कुछ नुकसान पहुँचाए चला जाता है। वह चला गया है जरूर, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु तुम्हारे मन की हालत क्या होगी? बिल्कुल भय से परिपूर्ण। तुम्हें काल्पनिक शेर भी सामने दिखता रहेगा। उसके दाँत और भयानक जबड़े तुम्हारे मन के आगे बिल्कुल यथार्थ की भाँति प्रकट होते रहेंगे। यही चित्त-लय की अवस्था है।

किसी युवा-स्त्री का पति मर गया, किन्तु तब भी उसे सदा यही अनुभव होता था कि वह उसके साथ है, और वह उसे खाना खिलाती थी। उसके पुत्रों ने कहा कि वह स्वयं दो व्यक्तियों का खाना खा जाती थी। अब वह सारी बातें समझ गई है। यह मन की तन्मय अवस्था का उदाहरण है, जब मन किसी एक में लीन हो जाता है। जब तक हम अपने चित्त को लीन नहीं करेंगे, तब तक प्रकृति और पुरुष एक-दूसरे से अलग नहीं होंगे। हंस नीर और क्षीर को अलग करने के लिए प्रसिद्ध है। यह श्वेत पक्षी जल में रहता है। इसका सबसे प्रिय निवास-स्थान मानसरोवर अर्थात् मन की झील है, जो कैलास के निकट स्थित है। मैंने उस पक्षी को देखा है। मैं उसके विषय में पूर्ण रूप से जानता हूँ। मैं 'हंस' को ही नहीं, बल्कि 'परमहंस' को भी जानता हूँ, जो नीर से क्षीर या पदार्थ से चेतना को अलग करने की कला में पारंगत है।

जब तुम आधी रात के समय श्मशान घाट में जाते हो तो तुम्हें ऐसा लगता है जैसे चारों ओर बहुत-से लोग हैं, जैसे बहुत-सी आवाजें बहुत दूर से आ रही हैं, और जैसे कोई मृतात्मा सामने आ गई है। ऐसे भयावह स्थान में मन की अवस्था में बहुत जल्दी विश्वास और भय का स्थान बन जाता है, और इसीलिए कोई-न-कोई आकृति बिल्कुल स्पष्ट दिखने लगती है।

ईशावास्योपनिषद् में हम पढ़ते हैं कि सत्य का मुँह सुवर्ण के ढक्कन से ढका हुआ है। सचमुच यह आनन्दमय आत्मा तीन पर्तों से आवृत्त है। हमें इन आवरणों को हटाना है। तीन परदे तथा सात द्वार हैं। तीन आवरणों तथा सात द्वारों के पीछे आत्मा अथवा पुरुष का क्षेत्र है, जहाँ केवल अनन्त आनन्द है। जब तक हम तीन पर्दों, सात

द्वारों और आन्तरिक पुरुष को नहीं जानेंगे, और जब तक हम यह नहीं जान लेंगे कि हमारे अन्दर महान् शक्ति है, तब तक हमें दु:ख और शोक से मुक्ति नहीं मिलेगी।

यह आत्मा वास्तव में निराकार है। इसका ही नाम शिव, राम, पुरुष इत्यादि है। यह आत्मा प्रकृति की तहों के अन्दर रमी है। इस आत्मा के चारों ओर करोड़ों मील तक चेतना फैली हुई है, जिसमें नारायण सो रहा है। जिसने साधना के द्वारा सत्यलोक में प्रवेश कर लिया है और अपनी आत्मा को उच्च गगन में ऊपर उठा लिया है, वह भगवान विष्णु को क्षीर-सागर में देखता और जानता है। वे अनन्त सागर में शयन करते हैं।

मैं तुम्हें यह बताना चाहता हूँ कि यह शरीर जितना तुम देखते हो, उतना ही नहीं है। दृष्टि और अनुभव की सीमा के परे हमने इसमें अनन्त शक्ति को देखा है। शरीर के आवरण के भीतर दिव्य-चेतना की परम शक्तियाँ छिपी हुई हैं। सात द्वारों के पीछे चेतना छिपी हुई है। आठवें द्वार पर तुम्हें उस आत्मा को पाना है। सब द्वारों को एक-एक करके खोलते जाओ। लो, वह वहाँ है। आकाश में ऊपर उठो। उन सात सीढ़ियों पर चढ़ो। सातवीं के पार एक मन्दिर है, जो प्रकाश से भरपूर एवं अनन्त सूर्यों के प्रकाश के समान है। वहाँ एक पवित्र पक्षी है, जो सहस्र दलों वाले शान्त और सुन्दर कमल के ऊपर बैठा हुआ है। और मुझसे सुनो कि वह मन्दिर तुम्हारे अन्दर है और वह पक्षी भी उसी मन्दिर के अन्दर है।

हमारा महान् बृहदारण्यक उपनिषद् कहता है—'वह जो मेरे अन्दर निवास करता है, जो मेरा तत्त्व है, किन्तु जिसे मैं जानता नहीं हूँ, और जो अन्दर से मुझे संचालित करता है, वही आत्मा है—अन्तर का शासक और अमर आत्मा।' उस पुरुष को कैसे जाना जाए? उसके पास कैसे पहुँचा जाए? मन के नियन्त्रण के द्वारा। फिर, मन को कैसे नियन्त्रित किया जाए? इसको वश में लाने के लिए अनेक तरीके हैं। मैं तुम्हें सर्वोत्तम तथा सबसे सरल तरीका बतलाता हूँ।

जब बहुमूल्य गहनों की कोई पेटी खो जाती है, तब हम अन्तर्मुखी हो जाते हैं। जब कोई बहुत बड़ी समस्या हमें घेरती है तो हमें अपने चारों ओर के वातावरण की खबर नहीं रहती। बहुत-से मनुष्य सामने से चले जाते हैं, पर हम उन्हें नहीं देखते। यह अन्तर्मुखी अवस्था उसको प्राप्त हो सकती है जो इसके तरीके को जानता है। जब कोई स्त्री सिलाई का कार्य करती है तो वह साथ-साथ बच्चे के लिए लोरी भी गाती है। उसके हाथ अपने आप चलते भी रहते हैं, और साथ-साथ वह अपनी सहेली से घर और परिवार के विषय में बातचीत भी करती जाती है। इससे यह पता चलता है कि मन के अन्तर्मुखी होने पर भी बाह्य कार्य चलते रह सकते हैं।

अन्तर्मुखी भावना के लिए तुम्हें एकाग्रता और ध्यान का तरीका जानना पड़ेगा। एक बार तुम उस तरीके को जान जाओ, तो तुम बहुत आसानी से उसका अभ्यास कर सकते हो। धीरे-धीरे मन नियन्त्रण में आ जाएगा। ध्यान से पुरुष और प्रकृति को अलग

करने की क्रिया सम्पन्न होती है। यह कैसे? जब हम राम के चित्र पर ध्यान की पूर्णता प्राप्त करते हैं, तब हम उसे बिल्कुल वास्तविक रूप में अपने सामने देख सकते हैं। निराकार साकार बन जाता है। प्रकृति अर्थात् पदार्थ से चेतना अलग हो जाती है। इस अवस्था में मन का अस्तित्व नहीं रह जाता। जब तुम राम पर ध्यान करते हो तो वास्तव में तुम अपनी आत्मा पर ध्यान करते हो, जो स्वयं को तुम्हारे प्रिय रूप में प्रकट करती है। यही तुम्हारी आत्मा है, जो तुम्हारे पास सात द्वारों को पार करके आती है। यही मन्दिर का हंस है, जिसे तुम, जिस रूप पर ध्यान करते हो, उसी रूप में देखते हो।

जब तुम समाधि में रहते हो तो ये सात द्वार खुल जाते हैं, आवरण हट जाते हैं। यही कारण है कि मैं तुम्हें ध्यान करने के लिए कहता हूँ। जैसे ही चित्त का लय होता है और ध्यान गहरा तथा प्रगतिशील होता है वैसे ही आत्मा व्यक्त होना प्रारम्भ कर देती है। लो, प्रकाश स्पष्ट दिख रहा है। वही आत्मा, जो तुम्हारे शरीर और मस्तिष्क को कार्य कराती है, साकार होकर तुम्हारे सामने आती है।

निराकार आत्मा के प्रकटीकरण के लिए सर्वोत्तम तरीका भक्ति है। यह आत्मा, यह महान् शक्ति, जो हमारे अन्दर सोई हुई है, सात्त्विक, राजसिक और तामसिक रूपों में अपने को प्रकट करती है। राजसिक और तामसिक वृत्तियाँ साधक के ऊपर प्रतिक्रिया-स्वरूप दु:ख, कष्ट और कभी-कभी मृत्यु तक भी ले आती हैं, जबकि सात्त्विक वृत्तियों में प्रकट होने से शान्ति, आनन्द और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

ज्ञानयोग में ध्यान की भूमिका

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

ज्ञानयोग की साधना का सम्बन्ध मनुष्य की बुद्धि के साथ रहता है। अपनी बुद्धि को प्रखर बनाना, इसको ईश्वर चिंतन से युक्त करना, आध्यात्मिक चिंतन से युक्त करना और भौतिक वासनाओं को कम करना, यह प्रयोजन है ज्ञानयोग का।

हमारी बुद्धि दो दिशाओं में जाती है। संसार के विषयों से जब बुद्धि जुड़ जाती है और फिर मनुष्य उस वस्तु की कामना करता है तब उस समय बुद्धि विषयाकार रूप लेती है। यही विषयाकार बुद्धि जीवन के अन्त तक हमारे साथ रहती है और हमेशा हमें संसार से जोड़कर रखती है। योगियों ने कहा है कि जब बुद्धि तुम्हें संसार के साथ जोड़ती है तब फिर तुम्हारे जीवन में माया का असर दिखलाई देता है। तुम्हारा मन, तुम्हारी बुद्धि विचलित और चंचल हो जाती है, अशांत हो जाती है और तुम फिर शांति की खोज करते हो कि यह शांति कहाँ मिलेगी। यह तो वैसी ही परिस्थिति हो गई कि एक कोयले की खदान में आदमी रोज श्वेत वस्त्र पहने और इच्छा रखे कि उसके वस्त्र कोयले की खदान में हमेशा सफेद ही रहें। यह संभव नहीं हो पाता है, क्योंकि कहीं-न-कहीं कोयले का कालापन वस्त्र में दाग अवश्य लगायेगा। उसी प्रकार से संसार में जब मनुष्य जन्म लेता है और जीवन में व्यापार वगैरह करता है तब उसकी बुद्धि बहिर्मुखी रहती ही है। वासनाओं, इच्छाओं, महत्त्वाकांक्षाओं, कर्मों, संस्कारों और परिस्थितियों के कारण मन और बुद्धि हमेशा बहिर्मुखी होते हैं।

अन्तर्मुखी बनना एक कठिन प्रयास होता है। शरीर को पाँच मिनट के लिए स्थिर करना परेशानी का काम है तो सोच लो कि मन को स्थिर करने में कितनी परेशानी होगी। मन विषयों के चक्कर में हमेशा अशांत रहता है और उसमें वासनाओं का जन्म होते रहता है। वासना हमेशा सगर्भा होती है। एक वासना जन्म लेती है और उसके गर्भ में दूसरी वासना पलती है। फिर वह वासना जन्म लेती है और उसके गर्भ में तीसरी वासना पलने लगती है। वासना का कोई अन्त नहीं होता और उसके कारण मन, बुद्धि और चित्त हमेशा अशांत एवं विक्षिप्त रहते हैं। फिर मनुष्य सुख, शांति और संतोष की खोज करता है इस विचलित अवस्था से मुक्त होने के लिए। इसलिए अपने आप को केन्द्रित करना आवश्यक है जिससे हम अपने शरीर, इन्द्रियों और मन की चंचलता को शांत कर सकें।

ध्यान–ज्ञानयोग का साधन

इसीलिए ज्ञानयोग को सिद्ध करने की जो विधि है वह ध्यान से आरंभ होती है। ध्यान एक शब्द है किंतु इस प्रक्रिया में हम अनेक अवस्थाओं से गुजरते हैं। लोग

सोचते हैं कि आँखें बंद करके ध्यान लगा लो, तुम्हें सब कुछ मिल जाएगा। यह तो वैसा ही सोचना हुआ कि पढ़ना-लिखना सीख लो, तुम्हें एम.ए. की डिग्री मिल जाएगी। ध्यान लगाने से प्राप्ति निश्चित रूप से संभव है, उसमे कोई दो मत नहीं, जैसे पढ़ने-लिखने से डिग्री मिलना भी संभव है, लेकिन उसके लिए मनुष्य को साधना करने की आवश्यकता पड़ती है, परिश्रम करने की आवश्यकता पड़ती है, केवल चिंतन करने से कुछ प्राप्त नहीं होता।

हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि ध्यान द्वारा अपनी विषयाकार वृत्ति को बदलना है और इस वृत्ति को बदलकर ब्राह्मी वृत्ति को अपनाना है। ब्राह्मी वृत्ति को प्राप्त करना ज्ञानयोग का ध्येय होता है। प्रश्न उठता है कि ब्राह्मी वृत्ति का मतलब क्या? पहली चीज यह कि वह वृत्ति जो विषयों से जुड़ी है, विषयों से मुक्त हो जाती है। वह इच्छा जो वासना से जुड़ी है, वासना से मुक्त हो जाती है। वह विचार जो महत्त्वाकांक्षा से जुड़ा है मुक्त हो जाता है। यह पहली चीज है और उसके पश्चात् फिर एक चिंतन की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है कि वास्तव में मैं कौन हूँ, मेरा क्या स्वभाव है, मेरा क्या चरित्र है, मेरी क्या इच्छा और महत्त्वाकांक्षा है, मेरा क्या सामर्थ्य और कमजोरी है—इन सब को पहले समझना पड़ता है चिंतन की प्रक्रिया में।

इस प्रकार अपने को जानकर जब सब शांत हो जाता है तो फिर उत्तम विचार आरंभ होता है। अगर उत्तम विचार को पहले तुम पकड़ना चाहोगे तो जो निम्न विचार हैं, वे ज्यादा प्रभावशाली होने के कारण उस उत्तम विचार को पकड़ने नहीं देंगे। उदाहरण के लिए, माला के साथ मंत्र जप करने में पाँच-दस मिनट का समय लगता है, लेकिन उस छोटी-सी अवधि में मन कितनी बार मंत्र से भागता है? बार-बार

उसको खींचकर हम मंत्र से जोड़ते हैं। इसलिए एकाग्र चित्त की प्राप्ति पहले और उसके बाद ज्ञानयोग की प्राप्ति करनी है।

उत्तम विचार को प्राप्त करने के पहले अपने को समझो और अपनी नकारात्मक अवस्थाओं का निराकरण करो। नहीं तो क्या होगा? उत्तम विचार आएगा, लेकिन घटिया विचार मन को फिर इस धरातल पर खींचकर ले आयेगा। मंदिर जाते हैं, जूता बाहर खोलते हैं, अन्दर प्रवेश करते हैं, भगवान के सामने माथा टेकते हैं, उनका नाम लेते हैं, मंत्र जपते हैं, लेकिन मानस पटल पर चिह्न और स्मृति अपने जूते के ही होती है। मंत्र जप रहे हैं भगवान का, लेकिन ख्याल आ रहा है कि कोई मेरा जूता उठाकर ले न जाए। यहाँ पर मंत्र हुआ उत्तम विचार और जूते का ख्याल हुआ निम्न विचार। एक शुद्ध विचार की अपेक्षा एक अनर्गल विचार मन को दिशान्तरित कर देता है।

ध्यान के तीन सोपान

ध्यान योग की पद्धति में कहा गया कि सबसे पहले इन्द्रियों की स्थिरता को प्राप्त करो। सबसे पहले इन्द्रिय संयम करो। ध्यान के क्रम में सबसे पहले आता है कायास्थैर्यम् का अभ्यास। कायास्थैर्यम् का अर्थ ही होता है इन्द्रियों की स्थिरता को प्राप्त करना। चंचल इन्द्रियाँ मन और बुद्धि को विचलित कर देंगी, इसलिए विचलित करने वाले भौतिक कारणों को पहले शांत किया जाए। यह ध्यान की प्रथम अवस्था होती है—इन्द्रिय संयम को प्राप्त करना।

ध्यान के दूसरे चरण में मन की चंचलता को शांत किया जाता है। धीरे-धीरे मंत्र पर या श्वास पर या जो भी हमारे ध्यान का प्रतीक होता है, उससे मन को जोड़ा जाता है और उसमें मन को टिकाया जाता है। एक बार गुरु द्रोणाचार्य अपने शिष्यों की धनुर्विद्या की परीक्षा ले रहे थे। एक-एक करके वे अपने शिष्यों को बुलाते हैं, एक तीर देते है और कहते हैं कि सामने पेड़ पर एक मिट्टी की चिड़िया रखी है, उसकी आँख को तुम तीर मारो। जब शिष्य उनके तीर का संधान करता तो वे पूछते कि क्या देख रहे हो? चेला कहता, मैं सब कुछ देख रहा हूँ। आप खड़े हो, आपको भी देख रहा हूँ, अपने भाइयों को भी देख रहा हूँ, पेड़ को भी देख रहा हूँ, पत्तों को भी देख रहा हूँ, पक्षी को भी देख रहा हूँ, आसमान को भी देख रहा हूँ। द्रोणाचार्य जी कहते थे, धनुष नीचे कर दो।

अंत में अर्जुन की बारी आती है। वह भी बाण का संधान करता है और जब उससे पूछा जाता है कि तुम क्या देख रहे हो तो वह कहता है कि केवल चिड़िया की आँख मुझे दृष्टिगोचर हो रही है। इसके सिवा और कुछ नहीं दिखता है। द्रोणाचार्य जानबूझ कर टटोलते हैं, पेड़ नहीं दिखलाई दे रहा है? जी नहीं। पत्ते नहीं दिखलाई दे रहे हैं? जी नहीं। वह टहनी दिखलाई दे रही है जिस पर चिड़िया बैठी है? जी नहीं। तब उन्होंने कहा, चलाओ बाण। बाण धनुष से छूटा और सीधे चिड़िया की आँख में जा लगा।

यह है एकाग्रता। सिर्फ आँखें बंद करके संसार से अलग होना एकाग्रता नहीं है। शुतुर्मुर्ग भी अपने सिर को जमीन में गाड़ देता है और सोचता है कि मुझे कोई नहीं देख रहा है। उसी प्रकार से हमलोग ध्यान करते हैं। आँखों को बंद कर लेते हैं और सोचते हैं कि हम संसार से अलग हो गये। आँखों को बंद करने से कोई संसार से अलग नहीं होता, बल्कि आँखों को खुला रखकर अगर तुम अपने आप को केन्द्रित रख सकते हो तो वह सही ध्यान है, जिसमें तुम बाहर की सभी चीजों से मुक्त हो गये।

शुकदेव जी की कहानी इसका उदाहरण है। एक बार शुकदेव राजा जनक के दरबार में जाते हैं और कहते हैं, 'मेरे पिताजी ने मुझे आपके पास भेजा है शिक्षा के लिए, लेकिन मुझे समझ में नहीं आता कि आप मुझे क्या शिक्षा देंगे। आप तो भोग-विलास में रहते हैं। आपका महल हर सुविधा से युक्त है। नर्तकियाँ नाच रही हैं, संगीतज्ञ संगीत बजा रहे हैं, राज्य का काम-काज हो रहा है, धन आ रहा है, संपत्ति का वितरण हो रहा है, मुकदमों का निपटारा हो रहा है, सब कुछ तो हो रहा है, फिर आप मुझे क्या शिक्षा देंगे?' राजा ने कहा, 'देखो, अभी मैं कामकाज में थोड़ा व्यस्त हूँ, कुछ देर बाद तुमसे बातचीत करूँगा। तब तक एक काम करो, तुम शहर घूम आओ।'

शुकदेव शहर घूमने के लिए तैयार हो गए, कहा कि तीन-चार घण्टे घूमकर आता हूँ। राजा ने कहा, 'एक मिनट, मेरे दो अंगरक्षक तुम्हारे साथ जाएँगे। और एक चीज, अपने सिर पर पानी से भरा एक बर्तन भी रख लो। उस बर्तन को लेकर तुम आराम से शहर घूमो। लेकिन अगर पानी की एक भी बूंद उस बर्तन से छलकी तो ये अंगरक्षक तुम्हारा गला काट देंगे!'

शुकदेव महल से निकले। नगर में दुर्गा पूजा का उत्सव मनाया जा रहा था, नगाड़े बज रहे थे, फूलों की वर्षा हो रही थी, धूप-अगरबत्ती जल रही थी, लोग नाच रहे थे, दुकानों में मिठाई बिक रही थी, बच्चे गलियों में खेल रहे थे। पूरे नगर में उल्लास और आनन्द का वातावरण था। चार घण्टे तक शुकदेव महाराज नगर घूमते हैं और फिर महल लौटते हैं। बहुत सावधानी से पानी के बर्तन को अपने सिर से नीचे उतार कर रखते हैं। राजा ने पूछा, 'नगर घूम लिया?' शुकदेव ने कहा, 'हाँ घूम लिया।' 'कैसा लगा नगर? शोभा कैसी है नगर की? उत्सव कैसा लगा? पूजा कैसी थी, देखा सब?'

शुकदेव बोले, 'क्या कहा आपने? मैंने तो कुछ देखा ही नहीं।' 'अरे, पिछले चार घण्टे से तुम क्या कर रहे थे? पूरे शहर में नगाड़े बज रहे हैं, गुलाल उड़ रही है, कीर्तन हो रहा है, संगीत हो रहा है, सब कुछ हो रहा है।' शुकदेव ने कहा, 'मुझे तो उसका कुछ आभास नहीं हुआ। आपने ऐसी शर्त जो लगा दी थी। पानी से भरा बर्तन मेरे सिर पर रख दिया। हर समय मेरा पूरा ध्यान वहीं रहा कि पानी की एक बूंद भी न गिरे। इसलिए मैंने बाहर कुछ देखा ही नहीं।'

राजा जनक कहते हैं, 'जिस शिक्षा के लिए तुम आये थे, वह तुम्हें मिल गयी, अब तुम जा सकते हो।' शुकदेव अवाक् रह गए। पूछा, 'क्या मतलब?' राजा ने कहा, 'बस जो मुझे बतलाना था, मैंने तुम्हें बतला दिया। संसार में रहकर भी तुम संसार से अलग रह सकते हो। मैं कर्तव्य रूप में अपना सारा काम करता हूँ। इन सब चीजों से मेरी कोई आसक्ति नहीं है। जरा मेरे सिंहासन के ऊपर देखो।' शुकदेव नजर ऊपर करके देखते हैं। सिंहासन के ऊपर अनेक लंबे-तीखे भाले घोड़े के बाल से बाँधकर लटकाए गए थे। उसको देखकर शुकदेव पूछते हैं, 'महाराज, आपको खतरा नहीं है इन सब से?' 'लोगों के लिये खतरा है, लेकिन मैंने तो इन्हें यहाँ जान-बूझकर रखा है। घोड़े का बाल अगर टूट जाए तो भाला गिर जायेगा और मैं मर जाऊँगा। मैं यही मानकर चलता हूँ कि यह मेरा अंतिम क्षण है, इसलिए जो भी काम मुझे करना होता है, मैं तत्काल कर देता हूँ, कल के लिए कुछ नहीं छोड़ता।'

शुकदेव जी को दो शिक्षाएँ मिलीं राजा जनक से। 'कल करे सो आज कर आज करे सो अब, पल में परलय होयेगी बहुरी करेगा कब', यह पहली शिक्षा थी, और दूसरी शिक्षा थी कि संसार में रहते हुए भी अगर तुम अपने आपको केन्द्रित कर लेते हो तो संसार तुम्हें प्रभावित नहीं कर सकता है। यह ध्यान की दूसरी अवस्था है, जिसमें मन को बाँधा गया है, मन का संयम किया गया है।

जब ध्यान के अभ्यास से हमारी चंचल वृत्तियाँ, विचार और भावनायें धीरे-धीरे शांत हो जाती हैं, तब जाकर ध्यान की तीसरी अवस्था में द्रष्टा भाव को जागृत किया जाता है। द्रष्टा या साक्षी भाव का मतलब है कि मैं अपने आपको देख रहा हूँ, अपने व्यवहार को देख रहा हूँ, मैं अपने कर्मों, विचारों, महत्त्वाकांक्षाओं और अनुभवों का साक्षी हूँ। साक्षी भाव को विकसित करना ही ज्ञानयोग का आरंभ है। हम ध्यान से शुरू करते हैं और ध्यान के द्वारा ज्ञानयोग तक पहुँचते हैं।

साक्षी भाव ध्यानयोग का तीसरा चरण है और ज्ञानयोग का प्रथम चरण। साक्षी भाव द्वारा धीरे-धीरे मनुष्य अपने वैराग्य और विवेक का सदुपयोग करता है। बुद्धि के ये दो अस्त्र होते हैं। जैसे तुम्हारे दो पैर हैं, तुम्हें अगर चलकर कहीं जाना है तो पैर तुम्हें ले जाएँगे। उसी प्रकार बुद्धि को भी अगर कहीं जाना हो तो विवेक और वैराग्य इसके दो पैर हैं, दो पंख हैं। बुद्धि इन्हीं की सहायता से आगे बढ़ती है और विकसित होती है। विवेक तथा वैराग्य तब आते हैं, बुद्धि का साथ तब देते हैं जब तुम अपनी विषयाकार वृत्ति से मुक्त होकर ब्राह्मी वृत्ति में युक्त होना चाहते हो। विषयाकार वृत्ति को ब्राह्मी वृत्ति में बदलने का काम विवेक और वैराग्य करते हैं। विवेक और वैराग्य हमारे द्रष्टा भाव के आधार हो जाते हैं।

द्रष्टा भाव आने के पश्चात् मनुष्य संसार के प्रभाव से मुक्त रहता है। संसार में कर्म करता है निश्चित रूप से, अलग नहीं होता है, लेकिन कर्मों के परिणाम से, कर्मों के बन्धन से वह मुक्त रहता है। कर्म करते हुए भी वह स्वतंत्र है। ध्यान की तीसरी अवस्था में जब द्रष्टा भाव सिद्ध हो जाता है तो फिर ज्ञानयोग की भूमिका शुरू होती है।

–14 मई 2011, योगदृष्टि सत्संग शृंखला, गंगा दर्शन

साधक को न राग से पीड़ित रहना चाहिए, न द्वेष से सन्तप्त। विषयों में रमण करती हुई इन्द्रियों को राग और द्वेष से मुक्त कर आत्मसंयमी साधक प्रसन्नता की प्राप्ति करता है। राग और द्वेष का अर्थ यही हुआ कि साधक अभी भी प्रिय और अप्रिय के प्रति आसक्त है। केवल गृह-त्याग से राग-द्वेष का अंत नहीं होता। राग-द्वेष की संवेदानाओं का अंत वैराग्यजनित विवेक से ही होता है। तभी जाकर अनासक्ति जागती है, तुम संसार के नायक नहीं, देखनहार बन जाते हो।

– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

सत्यम् वाणी

स्वामीजी, आपके मन में कैसे आया कि सीता कल्याणम् करें?

हमको कुछ मन में नहीं आता जी, हम सोचते नहीं हैं। हमारी जो सोचने की मशीन है वह बंद है। नहीं, हमको आवाज सुनाई देती है और हम वैसा करते हैं। कल भगवान हम से कहेंगे यहाँ से चले जाओ, तो छोड़कर चले जाएँगे, उसमें क्या रखा है? सोचने से कुछ नहीं होता है। हमने बहुत सोचा जिन्दगी में। साठ-सत्तर साल तो केवल सोचा ही, योजना बनाई, कार्यक्रम बनाया। पर अब लगता है कि नहीं, मनुष्य चाहे अमीर हो या गरीब, दु:खी सब हैं। पैसे वाला भी दु:खी है और गरीब आदमी भी दु:खी है। बीमार आदमी भी दु:खी है और जो बीमार नहीं है वह भी दु:खी है। जितना कष्ट हमने यहाँ हिन्दुस्तान में देखा है उतना ही कष्ट हमने पश्चिम में भी देखा है। वहाँ कष्ट की कोई कमी नहीं है। फर्क इतना है कि यहाँ लोग झोंपड़ी में रोते हैं और वहाँ लोग मकान में रोते हैं। इसके अलावा कोई फर्क नहीं है। ये लोग पागल होकर सड़कों में भटकते हैं, वे लोग पागलखाने चले जाते हैं। मनुष्य अपने दु:ख का कारण नहीं जानता है। गरीब आदमी सोचता है अमीर हो जाऊँगा तो सुखी हो जाऊँगा। मगर अमीर होने के बाद देखता है दु:ख तो चल ही रहा है। तो असली चीज है दु:ख का निदान कैसे हो, मनुष्य सुखी कैसे महसूस करे?

अब इसमें संत-महात्माओं ने अपना-अपना रास्ता बताया है। जैन संत अपना रास्ता बता गये, भगवान बुद्ध अपना रास्ता बता गये, शंकराचार्य वेद-पुराण का रास्ता बता गये, मगर आदमी के पल्ले कुछ लग नहीं रहा है। आखिर भगवान बुद्ध ने तो रास्ता बताया, करोड़ों लोग बौद्ध बन गये, मगर बनने पर भी सुखी नहीं रहे। ईसा मसीह ने भी रास्ता बताया, लोग ईसाई बन गये, मगर सुखी तो कोई नहीं बना। बात समझ गये न। सुख की आखिरी कुंजी किसी के पल्ले नहीं पड़ रही है। तो रास्ता क्या है?

भगवान जगन्नाथ की जो पण्डा दिन-रात सेवा करता है वह भी रोता है। उसके घर में शोक है, चिन्ता है, व्यथा है, रुदन है, नहीं है क्या? गंगोत्री में जहाँ लोग मोक्ष के लिये जाते हैं, बद्रीनाथ में जहाँ दर्शन के लिये जाते हैं, वहाँ के पण्डे रोते नहीं हैं क्या? उन्हें शोक नहीं होता, व्यथा नहीं होती क्या? उनमें माया और ममता नहीं है क्या? उनमें मिथ्यादम्भ नहीं है क्या? न तो स्थान से सुख की प्राप्ति होती है, न ही उपदेश सुनने से। पर सुख के पीछे सब व्याकुल हैं। कुत्ते को भी बाहर बरामदे में रख दो, जब उसको ठण्ढ लगती है तो तुम्हारी चारपाई के नीचे आ जाता है। उसे भी सुख-प्राप्ति की आशा है। वेदान्त कहता है दु:ख की आत्यन्तिक निवृत्ति और परम सुख की प्राप्ति, यह सब जीवों का उद्देश्य है।

संत-महात्माओं में भी सबको सुख की प्राप्ति नहीं होती है। जब तक मनुष्य आशा से कर्म करेगा उसको दु:ख होगा ही। शत-प्रतिशत आशाओं की पूर्ति किसी की भी नहीं होती है। भगवान राम और कृष्ण ने अवतार लेकर बताया कि ईश्वर भी जब प्रकृति का आधार लेकर अवतार लेता है तो वह भी प्रकृति के धर्मों पर आश्रित हो जाता है। उसे भी प्रकृति के नियमों का पालन करना पड़ता है। प्रकृति तो विकारी है, और परमात्मा है निर्विकार। लेकिन निर्विकार परमात्मा जब विकारी प्रकृति पर आश्रित हो जाता है तो तमोगुणमय हो जाता है, रोता भी है। श्रीराम के जीवन में, कृष्ण जी के जीवन में त्रासदी रही, आदि से अन्त तक। सीता जी ने क्या सुख भोगा, राम जी ने क्या सुख भोगा? जब मनुष्य इस बात को स्वीकार कर ले कि दु:ख जीवन का एक अनिवार्य अंग है, जैसे प्रकाश के पीछे छाया, तब जाकर सुख मिलता है। दु:ख होगा ही, अवश्यम्भावी है, अपरिहार्य है, अनिवार्य है, फिर भी लोग दु:ख नहीं चाहते। यही सबसे बड़ी गलती है। कोई आदमी मृत्यु नहीं चाहता, कोई आदमी हानि नहीं चाहता, सबको लाभ चाहिये, सबको प्रशंसा चाहिये। बस, यही कारण है दु:ख का और कुछ नहीं। दु:ख नहीं चाहते हो, इसलिये दु:खी हो। संत-महात्मा को सुख-दु:ख से कोई मतलब नहीं, जो है सो ठीक है, चलेगा।

अभी पाश्चात्य जगत् पूर्व की तरफ बहुत तेजी से सरक रहा है। बीस साल में वहाँ के अच्छे चिकित्सक-डॉक्टर सब यहाँ आकर काम करेंगे। अपनी सारे आधुनिक उपकरण और तकनीकी लेकर यहाँ आयेंगे। यह दुनिया का आगे का रुख है। अब केवल सरकारी बैंक ही नहीं चलेंगे, बल्कि अंतरराष्ट्रीय बैंक भी आ रहे हैं भारत

में। इतनी जोर से आ रहे हैं कि आप सब अपना पैसा वहीं रखेंगे। सरकार इसको रोक नहीं सकती है। वह जमाना गया कि हमारे देश में यह नहीं आयेगा तो वह नहीं आयेगा। अब लोगों की मानसिकता बदल गई है। लोग कहते हैं, कहीं से भी चीज खरीदेंगे। राष्ट्रवाद एक राजनीतिक विचार है अर्थशास्त्र में, पर वास्तव में राष्ट्रीयता नाम की कोई चीज नहीं है। ज्ञान राजनीतिक सीमाओं के परे है, राष्ट्र की सीमाओं के परे है। बायॅलोजी पश्चिमी नहीं है। उसी तरह योग पूर्वी नहीं है। विज्ञान हमेशा सार्वभौमिक होता है। विद्या हमेशा सार्वभौमिक होती है। उसी तरह से सार्वजनिक उपयोग की जितनी चीजें हैं, जैसे बैंक, विश्वविद्यालय, शैक्षणिक संस्थान, ये सभी सार्वभौमिक हैं। कोई यह नहीं कह सकता कि हमारे यहाँ नहीं आएगा या वहाँ नहीं जाएगा। तुम्हारे यहाँ क्यों नहीं आएगा? या तो अपनी बैंक व्यवस्था बेहतर करो या बाहर निकलो। जो सरकार अपने देश में अपने लोगों को अच्छी सुविधाएँ मुहैया नहीं कर सकती उस सरकार को राजनीतिक दर्शन पर बोलने का कोई हक नहीं है, चाहे वह समाजवाद हो या साम्यवाद या पूंजीवाद। यदि सरकार लोगों तक नहीं पहुँच पाती तो उसे कोई हक नहीं है दर्शन के बारे में बोलने का। बगल के गाँव में जाकर देखिये, लोगों के घर में एक टार्च नहीं है, लालटेन नहीं है, कैसी सरकार है? तीस रुपये मजदूर को तनख्वाह देते हैं, तीस रुपये में किसका पेट भरता है?

सौ रुपया भी कुछ नहीं है। मजदूरों को कम-से-कम तीन-चार सौ रोज मजदूरी मिलनी चाहिये। आखिर वे भी इन्सान हैं, उनके भी अरमान हैं, उनकी भी वही जरूरतें हैं। डॉक्टर साहब के पास जाते हैं तो क्या वे मजदूर से दूसरी फीस लेते हैं? मरीजों से एक ही फीस होती है कि नहीं? बीमारी सबकी समान होती है। स्कूल में जाते हैं, फीस एक ही होती है। दुकान में जाओगे, आपको जिस कीमत पर साड़ी मिलेगी, मजदूर को भी उसी कीमत पर मिलेगी। अरे भाई, गरीब है, कीमत कम कर दो, ऐसा तो कोई नियम नहीं है। फिर उसकी मजदूरी कम किसलिए?

हमें अच्छा, समृद्ध देश चाहिए, राजनैतिक देश नहीं। इससे सहमत नहीं हो क्या? तुम्हारा जो ड्राईवर है, तुम्हें उससे भी हाथ मिलाना चाहिए। आखिर हमारा ड्राईवर हमसे हाथ काहे नहीं मिला सकता? हमारा नौकर हमारे सामने बैठकर हमारे साथ चाय क्यों नही पी सकता है? हमारे यहाँ यह जो सामाजिक ऊँच-नीच का भाव है वह सब तभी जाएगा जब हर आदमी को उसकी औकात दी जायेगी। नहीं तो ये राजनैतिक बातें सब फालतू चीजें हैं।

पश्चिमी संस्कृति मुख्य रूप से बनिया संस्कृति है। जहाँ उसको फायदा होगा वहाँ वह दौड़कर जायेगा। हिन्दुस्तान का बाजार अभी तक अछूता रहा है। अगर हिन्दुस्तान के नब्बे करोड़ लोगों को दस करोड़ परिवारों में बाँटा जाए तो उनमें से थोड़े परिवारों की ही खरीदने की क्षमता है। बाकी के पास नहीं है। व्यापारी समुदाय का यह धर्म होता है कि वह उपभोक्ता की खरीदने की क्षमता को बढ़ाए। जब तक

उपभोक्ता की खरीदने की क्षमता नहीं होगी तब तक व्यापार अच्छा नहीं चल सकता है। जब तुम अपने मजदूर को तीन सौ रुपया रोज दोगे तो तीन सौ रुपये का सामान खरीदेगा। अगर तीस दोगे तो तीस रुपये का सामान खरीदेगा। उसकी खरीदने की क्षमता पर बाजार निर्भर करता है। यहाँ इन लोगों के पास तो कुछ है नहीं। गाँवों में किसी के पास पैसा नहीं। उड़ीसा, बिहार, बंगाल, उत्तर प्रदेश, सब जगह दरिद्र गाँव नहीं हैं क्या? इन लोगों के घर में कोई चीज नहीं है। फटे कपड़ों को जोड़-जोड़ करके गुदड़ी बनाकर औरतें सोती हैं। हम तो उनके घरों में गये हैं, हम तो गरीबों के साथ बहुत रहे हैं। संन्यासियों को गरीबों के साथ रहना चाहिये और सेठों से पैसा लेना चाहिये। सीधी बात बोलता हूँ।

पैसा कमाने का तरीका तो यही है कि दुनिया एक होनी चाहिये, एक बाजार होना चाहिये केवल। हिन्दुस्तान में तुम चाहो तो मद्रास से भी सामान खरीद सकते हो, देवघर से भी और भुवनेश्वर से भी। एक बाजार है, तुम कहीं से भी सामान ला सकते हो। कोई कानून है क्या तुम्हें रोकने के लिए? नहीं। तो फिर इंग्लैण्ड से नहीं खरीद सकते, चीन से नहीं खरीद सकते, जापान से नहीं खरीद सकते, ये कानून क्यों हैं? यह टूटना होगा। जब यह कानून सब जगह से टूटेगा तब तुम देखोगे बाजार की व्यवस्था इतनी जबर्दस्त होगी कि ये सम्भाल नहीं पायेंगे। गरीबी का मुख्य कारण है बाजार का बाँधा जाना और जब बाजार बँधता है तो बाजार चढ़ता है। बाजार को खोलोगे, दाम घटेंगे।

मगर मैं समझती हूँ हम लोग काफी आलसी हैं। अगर इस वक्त हमारे पास खाने के लिये है तो हम सो जाते हैं। इसीलिये हम गरीब हैं।

आपकी बात कुछ हद तक सही है, लेकिन हम मानते हैं कि आलस्य सामाजिक संरचना का परिणाम है। अभी सामाजिक संरचना में हम लोगों ने संघर्ष को स्थान नहीं दिया है। जिस जाति ने संघर्ष किया, वह आराम से बैठ नहीं सकती। हम आपसे लड़ना नहीं चाहते, आप हमसे लड़ना नहीं चाहते, जबकि युद्ध अवश्यम्भावी है। अगर अगले तीस-चालीस साल में लड़ाई नहीं होगी तो सारी अर्थव्यवस्था हिल जाएगी। युद्ध सभ्यता को बदलता है, शक्ति के संतुलन को बदलता है, अर्थव्यवस्था को बदलता है। आखिर पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र पिछले दो विश्व युद्धों में ही तो बढ़ा है। लड़ाई, जिसके बारे में हम कहते हैं कि नहीं होनी चाहिये, समाज के लिये, राष्ट्र के लिये, विश्व के लिये आवश्यक है। इंग्लैण्ड जैसे देशों में लड़कियाँ इतनी आगे कैसे बढ़ी हैं? यूरोप में पहला और दूसरा विश्व युद्ध हुआ। दूसरा विश्व युद्ध तो बहुत भीषण हुआ था, आपको याद हो या न हो। जर्मनी, फ्रांस, इटली, इंग्लैण्ड में लाखों जवान लोग मारे गये, घर में केवल बड़े-बूढ़े और बच्चे रह गये। औरतों को बाहर निकलना पड़ा। आज देख लीजिये, वहाँ

औरतों की हालत जबरदस्त है। उनके यहाँ औरत-मर्द में काई फर्क नहीं है। यह सब युद्ध की वजह से हुआ।

युद्ध कुछ चीजों का सर्वनाश करता है और उनकी जगह नई चीजें लाता है। अगर विश्व युद्ध नहीं होता तो संयुक्त राष्ट्र संघ की उत्पत्ति नहीं होती। युद्ध समाज की कमियों को पूरा करने के लिए आता है। जब तक दूसरा विश्व युद्ध नहीं हुआ, अंग्रेज राज करते थे दुनिया पर। युद्ध ने पलड़ा बदला, शक्ति का केन्द्र अमेरिका बन गया। अब की बार लड़ाई हुई तो हो सकता है यहाँ चला आए खिसक कर।

हमारा देश इतना समृद्ध था, अब कितना नीचे गिर गया है।

जिस देश को पहले सोने की चिड़ियाँ बोलते थे, आज इसे जो कुछ हो गया है उसका मुख्य कारण स्त्रियों को सामाजिक भागीदारी से अलग करना है। हमारे यहाँ औरत की पारिवारिक भागीदारी है, मगर सामाजिक भागीदारी नहीं है। यह एक चीज हुई। दूसरी चीज है महिला शिक्षा। स्त्री के लिए जो सामाजिक नियम हैं उन्हें व्यावहारिक और यथार्थ पर आधारित करना होगा। जो नैतिक नियम हमने औरतों के लिये बनाये हैं, वही पुरुषों के लिये भी बनाने चाहिये। औरत विधवा होती है तो कपड़ा बदल देती है, चूड़ी तोड़ देती है जबकि आदमी विधुर होता है तो एक महीने के बाद दूसरी शादी कर लेता है! स्त्री और पुरुष के लिए सामाजिक नियम इतने अलग क्यों?

जब तक स्त्री की 100 प्रतिशत सामाजिक भागीदारी नहीं होगी तब तक यह समाज कभी अमीर नहीं हो सकता। अगर तुम पढ़ी-लिखी लड़की हो, तो जाकर डॉक्टर या लेक्चरर बनो, खुद पैसे कमाओ। घर में देखरेख करने के लिए किसी मैट्रिक पास लड़की को रख लो। वह तुम्हारा रसोईघर देखेगी, तुम्हारा टेलिफोन देखेगी, तुम्हारे बच्चों का स्कूल में आना-जाना देखेगी। तुम जाकर लेक्चरर का काम करो, दस-बारह हजार रुपये कमाओ और दो-तीन हजार रुपया उसको दे दो। अब औरतें दिनभर बच्चे को गोद में रखकर किनकिन करती रहती हैं। अरे, बेबी-सिटर याने बच्चे संभालने वाली दाई को बिठाओ, उस मैट्रिक पास लड़की को भी नौकरी मिलेगी। गरीबी को अगर दूर करना है तो यही रास्ता है।

लेकिन उस परिस्थिति में बच्चों और माता-पिता के बीच प्रेम कम रहता है।

देखो जी, दो चीजें हैं। या तो आप सम्पत्ति को देखो या बच्चों को।

हम लोगों को तो बच्चों का प्रेम चाहिये। बेबी-सिटर संस्कृति वाले विदेश में मानसिक शांति नहीं है।

तब तो गरीबी ही ठीक है। पर मानसिक शांति भारत में भी कहाँ है? हम लोगों के पास तो कितने सरफिरे आते हैं। मानसिक शांति यहाँ भी नहीं है, फर्क केवल इतना है कि वहाँ के मानसिक रोगी आंकड़ों में आ जाते हैं जबकि हमलोगों का पता नहीं चलता कि कौन पागल है। मानसिक समस्या तो सारी दुनिया में है। हमारे यहाँ कहते हैं कि सभी आधि-व्याधि का मूल है मोह। मोह एक हद तक सामाजिक आवश्यकता है, जो आपको और हमको बाँधकर रखती है माला की तरह। मगर एक हद के बाद मोह बहुत नकारात्मक हो जाता है, दु:ख का कारण बन जाता है। अगर आप मेरी माँ हैं या बहन हैं या बेटी हैं तो कोई जरूरी तो नहीं कि आप-हम साथ में रहें या एक-दूसरे को हमेशा देखते रहें। अगर हम भाई-बहन हैं, हम इस रिश्ते को मान लें, वही बहुत है। मुझे नहीं लगता कि उसके आगे जाने की जरूरत है। बच्चे को एक उम्र तक माँ की जरूरत पड़ती है, पुत्र को एक उम्र तक पिता की जरूरत पड़ती है। भाई-बहन का स्नेह कुछ दिन तक रहता है, उसके बाद दोनों को अलग होना ही पड़ता है। पति और पत्नी का सम्बन्ध वर्षों तक एक प्रकार का होता है, फिर उसके बाद रिश्ते का रूप बदल जाता है। एक उम्र तक वह भार्या रहती है, कभी वह माता की भूमिका अदा करती है और कभी-कभी मार्गदर्शक की भूमिका अदा करती है।

सम्बन्ध के बिना माला के 108 मनके सब गिर जायेंगे, यह तो मानने के लिये हम तैयार हैं, मगर सम्बन्धों को हमारे यहाँ इतना जटिल बना दिया है कि लगता है अब सम्बन्ध ही सब कुछ है, बाकी कुछ है ही नहीं। रही पाश्चात्य देशों की बात, मैं यह नहीं कहता कि उनका आदर्श समाज है, मगर जहाँ तक सम्बन्धों का सवाल है वे उन्हें कायम रखते हैं। पति ने अपनी पत्नी को भले ही तलाक दे दिया हो, मगर सालगिरह पर उसको शुभकामनाएँ भेजेगा। और वह भी भेजती है उसकी सालगिरह पर।

मगर बच्चों का क्या हाल होता है?

बच्चों का हाल तो एक है सब जगह पर। कितने बच्चे यहाँ सड़कों में घूमते हैं, कितने बच्चे सियालदा स्टेशन पर बैठे रहते हैं, उनका कोई घर नहीं है। लाखों की संख्या में हैं ऐसे बच्चे। पूरी दुनिया में अनाथ और लावारिस बच्चे बहुत ज्यादा हैं। उनके यहाँ कम इसलिये लगते हैं क्योंकि उनकी सरकारी संस्था उनका खाना-पीना दे देती है। यहाँ तो चोरी करते हैं। अनेकों लड़के रेलवे स्टेशन पर सोते हैं और चाय वगैरह की

दुकान में काम कर लेते हैं। चाहे वह एशिया हो, अफ्रीका हो या लैटिन अमेरिका, यहाँ तक कि चीन में भी हालत ऐसी ही है। हाँ, जापान ऐसा नहीं है, मगर वहाँ ड्रग्स लेने वाले बहुत हैं, अपराधी मानसिकता वाले बहुत हैं। पर इतना है कि उनको वहाँ दो वक्त की रोटी मिल जाती है जो यहाँ नहीं मिल पाती है।

कोई भी समाज, चाहे वह पाश्चात्य समाज हो या भारतीय, पूरी तरह दोषहीन नहीं होता। अब यह आप पर निर्भर करता है कि आप किस समाज को बेहतर मानते हो—ऐसा समाज जो समृद्ध है या जो संबंधों को ज्यादा महत्त्व देता है, जो यह मानता है कि बेटी की शादी ही जीवन का उद्देश्य है। संतुलन आवश्यक है। यह संतुलन अभी कहीं नहीं बन पा रहा है, चाहे पूर्व हो या पश्चिम। उन लोगों की हमसे तो बहुत बातें होती थीं। वे लोग भी नहीं चाहते कि शादी टूटे, कोई नहीं चाहता, पर कहते हैं, रहें कैसे भाई, रह नहीं पा रहे हैं। कहते हैं, 'हाँ स्वामीजी, इस बात से हम पूरी तरह सहमत हैं कि हमें एक-दूसरे को नहीं छोड़ना चाहिए, लेकिन क्या करें? जीवन नरक बन चुका है।' रह ही नहीं सकते हैं, घर में एक-दूसरे का मुँह नहीं देख सकते हैं। वह कुछ बोलता है तो तड़ाक से बोल देती है, वह कुछ बोलती है तो तड़ाक से बोल देता है। जब ऐसी चीजें आ जाएँ तो क्या करेंगे? हिन्दुस्तान में भी होता है।

मगर यहाँ पत्नी मान लेती है।

मानना पड़ता है, नहीं तो घर से कहाँ जाएगी? मायके तो बुढ़ापे में नहीं जा सकती। वे लोग भी मानते हैं कि संबंध में स्थिरता होनी चाहिये, मगर माता-पिता लड़की के

लिये लड़का तय करेंगे, यह उनकी समझ में नहीं आता है, और वह हमारी समझ में भी नहीं आता है। हमलोगों के देश में अनादि काल से स्वयंवर की प्रथा रही है। बीच में सीमा पार से हमारे विदेशी भाइयों के आने से दो-चार सौ साल में वह प्रथा खत्म हो गई, मगर सच्चाई यह है कि हमारे यहाँ स्वयंवर की प्रथा आदिकाल से रही है। यह हर तरह से स्वीकृत और सम्मानित प्रथा थी कि लड़की अपना वर खुद चुने। यहाँ तक तो ठीक है, मगर अब यह सवाल उठता है कि लड़की अगर अपना वर चुने तो लड़की में अक्ल कितनी है? अगर लड़की पढ़ी-लिखी हो, एम.ए. या बी.एस.सी. या कुछ और हो, कॉलेज में प्रोफेसरी करती हो, वह समझदार है, उसने दुनिया देखी है, वह स्वयंवर करने के योग्य है। मगर जो लड़की घर से कभी बाहर निकली नहीं, वह क्या स्वयंवर कर सकती है? उसको तो लोगों की मानसिकता मालूम नहीं, उसको मालूम ही नहीं कि आदमी बदमाश भी हो सकता है। इसलिए पहले तो लड़कियों को शिक्षा देनी होगी, फिर स्वयंवर को आना चाहिए। मुझे नहीं लगता कि माता-पिता को अपने बच्चों की शादी की ज्यादा चिंता करनी चाहिए।

शिक्षा से तो अपने आप बदलाव आ जाएगा न स्वामीजी?

नहीं, यहाँ आप लोगों को एक और बात बताना जरूरी है कि हमलोगों की जो सामाजिक व्यवस्था है, उसे युग के मुताबिक व्यावहारिक बनाना होगा। और हमारी वैदिक संस्कृति में इसके लिए प्रावधान रहे हैं। देखो, विश्वामित्र तो ऋषि थे न? पर उन्होंने भी एक लड़की पैदा कर दी, और समाज ने उसको स्वीकार किया। कण्व ऋषि ने उस लड़की, शकुन्तला का पालन-पोषण किया, और वहाँ वह फँस गई दुष्यन्त के प्रेमजाल में। केवल फँसी ही नहीं, गर्भवती भी हो गई, मगर जब कण्व आए और उनको पता चला तो उन्होंने कहा, कोई बात नहीं, तुम्हारा गंधर्व विवाह तो हो चुका है। बाद में दुष्यन्त के पास भेज दिया।

जो समाज अपने को समय के मुताबिक, ऋतु के मुताबिक, आबोहवा के मुताबिक बदल नहीं सकता वह समाज समाप्त हो जाता है। जब गर्मी आएगी तो आपके स्वेटर सब उतर जायेंगे, और जाड़ा आने पर स्वेटर आ जाते हैं। वैसे ही समाज को स्वेटर पहनने और उतारने की जरूरत पड़ती है। विदेशी हमलावरों के समय ठीक था कि आपने अपनी लड़कियों को संभालकर रखा। यह हम मानने के लिये तैयार हैं। लेकिन आज हम नहीं करेंगे यह सब, लड़कियो को बाहर लाना पड़ेगा। उसे अपने आपको संभालना होगा, खुद अपना गार्जियन, अपना संरक्षक बनना होगा। जब तक लड़की अपनी संरक्षक नहीं बन सकती तब तक वह गलती करती रहेगी। अगर चाहो कि लड़की गलती न करे तो उसे अपना संरक्षक बनना पड़ेगा। अठारह साल के बाद लड़की अपनी संरक्षक खुद बन सकती है। हर एक की आनुवांशिक बनावट यह कहती है कि दिमाग में जो स्विच होता है संरक्षक बनने का, वह अठारह साल के बाद आ जाता है।

हमारे देश की अवनति का एक ही कारण है, समाज का पचास प्रतिशत हिस्सा एकदम नाकाम कर दिया गया, माने गाड़ी का एक पहिया पंक्चर है। बस और कुछ नहीं है। स्त्री जाति को शिक्षा के क्षेत्र में और सामाजिक परिवेश के क्षेत्र में उठाओ, तुम्हारा देश उठ जायेगा। लड़कियों को बचपन से मालूम होना चाहिये कि लड़के लोग कितने बदमाश होते हैं। उनको गाँव से शहर जाना चाहिये, शहर से वहाँ जाना चाहिये, वहाँ से वहाँ जाना चाहिये, होस्टल में रहना चाहिये, तब उन्हें पता चलेगा कि समाज में सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी, बदमाश, माफिया, अपहरणकर्ता, सब तरह के लोग रहते हैं। जब खुद व्यावहारिक रूप से समझ आ जाएगा तब जाकर वे संभलेंगीं, नहीं तो कोई भगाकर ले जाए, उसमें क्या रखा है।

दूसरी चीज, लड़कियों की सम्पत्ति को कानूनन अलग करना पड़ेगा। उनके पास अपनी सम्पत्ति होनी ही चाहिए। यह कानून होना चाहिये कि ससुराल जाते समय सम्पत्ति उनके अपने नाम पर हो। पीहर वालों का तो दहेज ले जाएगी वह, और पीहर को दहेज देना होगा। ये सब दहेज विरोधी बातें हमें जमती नहीं। यह अव्यावहारिक चीज है, गलत और झूठा विचार है जो केवल राजनैतिक उद्देश्य के लिये किया गया है। सबसे अच्छा तो यही है कि लड़की का हक उसकी शादी के दिन उसके हाथ में देना चाहिये ताकि भाइयों के साथ झंझट ही न रहे। जैसे दो बीघा जमीन उसके नाम कर दी। हमारे यहाँ नारद संहिता और गर्ग संहिता जैसी जितनी पुरानी संहिताएँ हैं, उनमें लड़की के उत्तराधिकार के बारे में सब लिखा हुआ है। लड़की अपने सिर पर खेत को थोड़े ही ले जाएगी, वह सोना-चाँदी ले जायेगी। लड़की को दहेज में सोना और चाँदी, बहुमूल्य वस्त्र, बहुमूल्य अलंकार, यह सब देने का नियम है। यह उसका हक है माता-पिता के घर से। अभी तो तुमने कानून में दहेज को मना कर दिया, इसलिये लड़कियाँ अपने बाप की सम्पत्ति पर हक माँगेंगी। अगर तुम अपनी लड़की को उसका हिस्सा नहीं दोगे तो बाद में हक तो वह माँगेगी ही।

यह दहेज और डाउरी सब गलत शब्द हैं। संस्कृत में शब्द आता है दाय, जिसका मतलब होता है उत्तराधिकार, जो एक से दूसरे को मिलता है। यही दाय शब्द 'सम्प्रदाय' में आता है, जैसे संन्यास-सम्प्रदाय। संन्यास सम्प्रदाय में हम एक अधिकारी हैं, फिर हमारा शिष्य उत्तराधिकारी होगा। दाय का मतलब वह जो पिछली पीढ़ी से उत्तराधिकार में मिलना हो। हम लोगों के दायभाग को इन्होंने दहेज कह दिया और दहेज को अंग्रेजी में कह दिया डाउरी। वास्तव में लड़की का यह अधिकार है।

मगर ससुराल वाले माँग लेते हैं न ज्यादातर?

नहीं माँग सकते वे। इस पर कानून है। स्त्री-धन नाम से एक कानून होता है। स्त्री-धन का स्त्री के लिये ही खर्चा किया जाता है। शास्त्र का वचन है यह। हमारी लड़की जब शादी करके ससुराल गई और बीस-पचीस तोला सोना ले गई, वह उसका धन

है। वह धन पुरुष को नहीं दिया जाएगा, केवल लड़की को ही हस्तांतरित होगा। या तो उसकी पुत्री को मिलेगा या उसकी बहू को, बेटे को नहीं। वैदिक संहिताओं के अनुसार, वैदिक धर्म के अनुसार, जिसे आज आप हिन्दू धर्म बोल देते हो, स्त्री-धन अस्पृश्य है। स्त्री-धन केवल स्त्री को ही उत्तराधिकार में जायेगा, चाहे बेटी को जाए, चाहे बहू के पास जाए, चाहे नातिन को जाए या पोती को जाए। यह नियम पहले से था, अब इसको तोड़ा गया है। अब इसको कैसे व्यावहारिक बनाएँ, इस सवाल पर सोचना पड़ेगा। कानून भी बनाना पड़ेगा और विश्वास भी।

बात हो रही थी गरीबी की। गरीबी कोई जादू की छड़ी से दूर नहीं होती है, गरीबी को दूर करने वाली होती है स्त्री। स्त्री हमारे धर्म-शास्त्र में लक्ष्मी का रूप मानी जाती है। पुत्र-वधू को भी लक्ष्मी का रूप मानते हैं, पर अब इस लड़की के साथ हमारा क्या व्यवहार होता है? जब पहली बार वह हमारे घर में आती है तो सूटकेस भर-भरकर लाती है, बैंक ड्राफ्ट लाती है, जेवर लाती है। बड़ा घर हुआ तो गाड़ी, स्कूटर, टीवी, वीडियो भी लाती है। व्यवहार हमारा? सारे बर्त्तन उससे साफ करवाते हैं, कपड़े उससे धुलवाते हैं, पैर उससे दबवाते हैं, उसकी पिटाई करते हैं, यह लक्ष्मी के साथ व्यवहार है!

तुम उसके घर गये खाली हाथ कंगाल की तरह, वह तुम्हारे घर लक्ष्मी की तरह आई, और तुम्हारा उसके साथ यह सलूक है! उसके कपड़े में एक दाग लग जाता है तो वह अपवित्र हो जाती है, और तुम पवित्रता का स्थायी ठप्पा लगा कर आए हो! वाह! ऐसा समाज चलेगा क्या? यह समाज कभी भी अमीर नहीं बन सकता। अमीर बनने के लिए समाज को सबसे पहले स्त्री और पुरुष को समान दर्जा देना पड़ेगा। वही कानून आपके लिए और वही कानून उसके लिए। सामाजिक विधान और कानूनी विधान समान होने चाहिये। और यह होगा। आप को कुछ करना नहीं, यह युग की हवा है। अगली शताब्दी के पहले तीस-चालीस सालों में यह होगा ही। यह तो युग का विधान है। कोई भी शक्ति, कोई भी सत्ता, वह बड़ी-से-बड़ी क्यों न हो, हमेशा टिक नहीं सकती। काल सबको अपने में समेट लेता है– *कालो जयति सर्वदा*। ईसाई धर्म कितना शक्तिशाली था, लेकिन पिछली शताब्दी से एक-एक करके बहुत-से साधु-संन्यासी वैदिक मत को सामने लाते गए। सबसे पहले स्वामी विवेकानन्द जी आए, फिर स्वामी शिवानन्द जी आए, स्वामी भक्तिवेदान्त आए। हमने भी बहुत सारे लोगों का सर मुड़वा दिया, नाम बदल दिया, तिलक लगवा दिया। समय ऐसी चीज है जो बड़ी-से-बड़ी शक्तियों के घुटने टिका देता है।

समय आ रहा है कि स्त्रियाँ ऊँची उठेंगी और हमें उनके साथ बराबरी में हाथ मिलाना होगा। यहाँ तो स्त्रियाँ शुरू से स्वतंत्र और योग्य रहीं, लेकिन जब विदेशी आक्रमणकारी आए तो अपने साथ एक रेगिस्तानी संस्कृति, एक पहाड़ी संस्कृति लेकर आए, और यहाँ हम पर थोपनी शुरू कर दी। जो राजा होता है उसकी संस्कृति

तो माननी पड़ेगी न? माननी पड़ी हम लोगों को। धीरे-धीरे तीन-चार सौ सालों में बहुत कुछ बदला, फिर अंग्रेज आए तो थोड़ी व्यवस्था बदली। अब आगे तो सारी दुनिया समरूप होने जा रही है।

सर्वधर्म-समन्वय

हमलोगों के तंत्रशास्त्र में स्त्री को देवी मानते हैं। बंगाल में और मिथिला में कौलाचार तंत्र चलता था। उसमें दीक्षा माँ से ही पुत्री को मिलती थी। इसका मतलब माँ ही गुरु है। बंगाल, मिथिला और उड़ीसा में कौलाचार तंत्र बहुत प्रचलित था। असम में भी तंत्रशास्त्र की बहुत महिमा थी। तंत्रशास्त्र में उड़ीसा को ओड्यानपीठ कहते हैं। तंत्र में तीन पीठ होते हैं, जिनमें से ओड्यानपीठ एक है। उड़ीसा, बंगाल और मिथिला की जो संस्कृति है वह तंत्र से प्रभावित है।

इस बार सीता-कल्याणम् में हमलोगों ने यहाँ ईसाई-धर्म का मास भी आयोजित किया था। ऑस्ट्रेलिया से तीन पादरियों को बुलाया था, उन्होंने कम्यूनियन का पूरा अनुष्ठान किया, बड़ा अच्छा लगा लोगों को। हमने भी काला कपड़ा पहनकर, क्रॉस लगाकर भाग लिया, क्या फर्क पड़ता है जी? राजनीति में फर्क पड़ता है, धर्म में क्या फर्क पड़ता है? अरे बाईबिल पढ़ो, क्या फर्क पड़ता है? वह भी तो रामायण की तरह एक अच्छी किताब है, भगवान की किताब है। चोरी करो जैसी कोई बुरी चीज तो नहीं लिखी है न? फिर क्यों नहीं पढ़ोगे? कुरान क्यों नहीं पढ़ोगे? कुरान में कोई बुरी बात लिखी है क्या? यहाँ संस्कृत में लिखा है और वहाँ अरबी में लिखा है, क्या फर्क पड़ता है?

हम यहाँ मौलवी जी को भी बुलायेंगे। लोगों को कुछ मालूम नहीं है कि दूसरे लोग कैसे पूजा करते हैं। सब गंवार लोग हैं। एक-दूसरे के धर्म की निन्दा करते रहते हैं पर किसको मालूम है कि मुसलमान कैसे नमाज अदा करता है, इबादत कैसे करता है? ईसाई लोग कैसे पूजा करते हैं, मालूम नहीं है। देखा ही नहीं है किसी ने, पर निन्दा करते रहते हैं, दूसरे के धर्म के बारे में मजाक की बातें करते जाते हैं। असलियत तो किसी को पता ही नहीं है।

हाँ, यह बात जरूर है कि कर्मकाण्ड वैदिक धर्म में सबसे अधिक है और इससे थोड़ा कमती है यहूदियों में। यहूदियों में भी बहुत कर्मकाण्ड होता है। इस्लाम में कर्मकाण्ड बिल्कुल नहीं है। ईसाई धर्म में है थोड़ा, मगर बहुत थोड़ा। मोमबत्ती जला देते हैं, अगरबत्ती जला देते हैं, घण्टी बजा देते हैं। मगर यहूदियों में और वैदिक धर्म में बहुत कर्मकाण्ड है।

आप यहाँ किसी मौलवी जी को बुलायेंगे?

हाँ, बुलायेंगे। हमारे बहुत-से मित्र हैं। धर्म में थोड़े ही झगड़ा है। देखो जी, सब धर्म एक ही हैं, यह तो कहना गलत है। अब मुंगेर से देवघर का रास्ता और कलकत्ते से देवघर का रास्ता अलग-अलग तो होगा ही न। अगर कलकत्ता वाला आदमी देवघर आयेगा तो मुंगेर होते हुए थोड़े ही आयेगा? लक्ष्य देवघर है, पर रास्ते अलग-अलग हैं। रास्ते तो अलग-अलग होने ही चाहिये। कोई बेवकूफ है, कोई गधा है, कोई विद्वान् है, कोई ज्ञानी है, कोई लोभी है, कोई लालची है—सबके लिये रास्ता अलग-अलग तो होना ही चाहिये। मगर हाँ, सभी धर्म एक ही लक्ष्य की बात कहते हैं। अलग-अलग रास्ते हैं, मगर मंजिल एक ही है।

—15 दिसम्बर 1997, रिखियापीठ

STOP PRESS

योगा एवं *योगविद्या* प्रसाद

सन् 2013 में बिहार योग विद्यालय ने अपनी स्वर्ण जयन्ती मनाई, जिसका समापन अक्टूबर 2013 में आयोजित विश्व योग सम्मेलन के साथ हुआ। इस ऐतिहासिक सम्मेलन में यह स्पष्ट हो गया कि योग को नगर-नगर डगर-डगर पहुँचाने का संकल्प सफलतापूर्वक सम्पन्न कर लिया गया है। 50 वर्षों की अवधि में दुनियाभर के योग साधकों और योग प्रेमियों की मदद से प्राप्त यह उपलब्धि यौगिक पुनर्जागृति की द्योतक है।

विश्व योग सम्मेलन के पश्चात् बिहार योग विद्यालय के दूसरे अध्याय का श्रीगणेश हो गया है, जिसका लक्ष्य भावी पीढ़ियों के कल्याण के लिए स्वामी शिवानन्द जी और स्वामी सत्यानन्द जी की परम्परा से प्राप्त योग विद्या का संरक्षण और संवर्धन है।

इस दूसरे अध्याय में बिहार योग विद्यालय *योगा* और *योगविद्या* पत्रिकाओं को गुरु परम्परा के आशीर्वाद सहित प्रसाद स्वरूप प्रस्तुत कर रहा है। वर्त्तमान डिजिटल युग में योग विद्या के प्रभावी प्रचार-प्रसार हेतु *योगा* और *योगविद्या* पत्रिकाएँ अब पी.डी.एफ. फॉरमैट में डाउनलोड हेतु उपलब्ध हैं, तथा साथ ही IOS एवं Android प्लैटफार्मों पर नि:शुल्क एप्प के रूप में उपलब्ध हैं।

***योगा* पत्रिका डाउनलोड करने के लिए–**
http://www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/

***योगविद्या* पत्रिका डाउनलोड करने के लिए–**
http://www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

IOS प्लैटफार्म पर *योगा* एवं *योगविद्या*, दोनों पत्रिकाओं को पढ़ने के लिए इस एप्प को डाउनलोड करें–https://itunes.apple.com/us/developer/bihar-school-of-yoga/id1134424786

Android प्लैटफार्म पर *योगा* पत्रिका पढ़ने के लिए यह एप्प डाउनलोड करें – https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.yogapeeth.app.emag.android.yoga

Android प्लैटफार्म पर *योगविद्या* पत्रिका पढ़ने के लिए यह एप्प डाउनलोड करें – https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.yogapeeth.app.emag.android.yogavidya

***योगा* पत्रिका की पुरानी प्रतियों के संग्रह** को पढ़ने तथा उनमें किसी विषय को खोजने हेतु देखें–http://www.yogamag.net/archives.shtml

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/16-18
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2017

अक्टूबर 1-30	प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण (अंग्रेजी)
अक्टूबर 2- जनवरी 28	चातुर्मासिक योग अध्ययन (अंग्रेजी)
अक्टूबर 16-20	क्रिया योग-मॉड्यूल 1 (अंग्रेजी)
अक्टूबर 16-20	क्रिया योग-मॉड्यूल 2 एवं तत्त्व शुद्धि (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	हठ योग मॉड्यूल 1-षट्कर्म का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	हठ योग मॉड्यूल 2-आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
नवम्बर 1- जनवरी 30 2018	यौगिक जीवनशैली का अनुभव (विदेशी प्रतिभागियों के लिए)
दिसम्बर 11-15	योग चक्र शृंखला (अंग्रेजी)
दिसम्बर 18-23	राज योग मॉड्यूल 1-आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
दिसम्बर 18-23	राज योग मॉड्यूल 2-प्रत्याहार का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net
✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।